॥ श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः ॥

# श्रीचैतन्यचरित्र–पीयूष

## (श्रीचैतन्य महाप्रभुका संक्षिप्त जीवन–चरित्र)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता
श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके
अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
**श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज**
द्वारा
**सम्पादित**

**गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन**

**द्वितीय संस्करणः** ५,००० प्रतियाँ

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ
विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण
गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव-तिथि-पूजा
मौनी अमावस्या, ३० जनवरी २०१४

**प्रकाशन-मण्डली (द्वितीय संस्करण):**

**सङ्कलन एवं अनुवादः** परमेश्वरी दास
**टाइपः** प्राणकृष्ण दास, सुन्दरगोपाल दास
**प्रूफ-संशोधनः** अमलकृष्ण दास, शान्ति दासी
**ले-आउटः** शान्ति दासी
**कवर-डिजाइनः** कृष्णकारुण्य दास
**कवर-चित्रः** वासुदेव दास
**प्रकाशन संयोजनाः** माधवप्रिय दास
**आभारः** दामोदार दास, अमलकृष्ण दास (रशिया)

## प्राप्तिस्थान

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०९७६०९५२४३५

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)

श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०९८७१५७७३५४

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०९६२७४२६३४३

श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ
२९३, सैक्टर-१४
फरीदाबाद, हरियाणा
०९९११२८३८६९

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰बं॰)
०९१५३१२५४४२

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी,
उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३१०१

# विषय-सूची


| | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| | प्रस्तावना | क-ख |
| | प्रकाशकीय-वक्तव्य | ग |
| १. | पूर्वाभास | १ |
| २. | श्रीमन्महाप्रभुके अवतारकी सूचना | ३ |
| ३. | जन्म-लीला | ५ |
| ४. | सर्प-धारण | ८ |
| ५. | दो चोरोंपर कृपा | १० |
| ६. | तैर्थिक ब्राह्मणपर कृपा | १३ |
| ७. | भक्तिविमुख एवं वैष्णव-विद्वेषी ब्राह्मणोंको दण्ड | २२ |
| ८. | कन्याओंसे हास-परिहास | २३ |
| ९. | ब्राह्मणों एवं कन्याओंपर अपरोक्ष कृपा | २४ |
| १०. | विश्वरूपका संन्यास | २६ |
| ११. | पुनः चञ्चलता प्रकाश | २७ |
| १२. | माताको शिक्षा | २८ |
| १३. | उपनयन संस्कार तथा पुनः विद्या-अध्ययन आरम्भ | ३० |
| १४. | जगन्नाथ मिश्रका स्वप्न तथा परलोक-गमन | ३१ |
| १५. | ज्योतिषीपर कृपा | ३२ |
| १६. | भक्त श्रीधरसे प्रेम-कलह | ३३ |
| १७. | दिग्विजयी पण्डितका उद्धार | ३७ |
| १८. | महाप्रभुकी गया यात्रा | ४४ |
| १९. | ईश्वरपुरीसे दीक्षा ग्रहण | ४५ |
| २०. | श्रीवासको चतुर्भुजरूपका दर्शन कराना | ४७ |
| २१. | श्रीअद्वैताचार्यको दिव्य दर्शन | ४८ |
| २२. | श्रीवास पण्डितपर कृपा | ५० |
| २३. | गङ्गादासपर कृपा | ५० |

२४. श्रीधरपर कृपा ..... ५१
२५. मुरारिगुप्तपर कृपा ..... ५४
२६. हरिदासपर कृपा..... ५५
२७. मुकुन्दपर कृपा ..... ५६
२८. जगाइ–माधाइका उद्धार..... ६०
२९. काजी–उद्धार ..... ६५
३०. संन्यास–ग्रहण..... ६९
३१. सार्वभौमका उद्धार..... ७०
३२. दक्षिण भारतकी यात्रा ..... ७३
३३. कुष्ठ–विप्रका उद्धार..... ७३
३४. बौद्ध–आचार्यका उद्धार ..... ७५
३५. श्रीवैङ्कटभट्टपर कृपा..... ७६
३६. गोदावरीके तटपर राय–रामानन्दसे मिलन ..... ७८
३७. राजा प्रतापरुद्रके पुत्रको दर्शन देना ..... ८१
३८. गुण्डिचा–मन्दिर–मार्जन ..... ८२
३९. रथके आगे महाप्रभुका नृत्य तथा प्रतापरुद्रपर कृपा... ८४
४०. अमोघका उद्धार..... ८६
४१. वृन्दावन–यात्रा एवं झाड़खण्डमें पशु–पक्षियोंको प्रेमदान..८८
४२. वाराणसीमें मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द द्वारा
प्रभुकी निन्दा ..... ९०
४३. मथुरामें श्रीमन्महाप्रभुका आगमन ..... ९३
४४. पठानोंपर कृपा..... ९५
४५. श्रीरूप–शिक्षा ..... ९६
४६. श्रीसनातन–शिक्षा ..... ९८
४७. प्रकाशानन्द सरस्वतीका उद्धार..... ९९
४८. वैराग्यकी शिक्षा ..... १०६
४९. गम्भीरा–लीला..... १०८
गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन ग्रन्थावली ..... १११

# प्रस्तावना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्य मेरे श्रील गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे उन्हींके प्रीतिविधानके लिए श्रीगौड़ीय-भक्ति-साहित्यसे राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अनूदित एवं उन्हींके विचारोंपर प्रतिष्ठित बहुत-से ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं। उसी कड़ीमें आज मेरे सतीर्थ प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अनुग्रह तथा श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारीके अक्लान्त परिश्रामसे श्रीचैतन्यभागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि प्रामाणिक गौड़ीय-ग्रन्थोंसे संग्रहीत 'श्रीचैतन्य-चरित्र-पीयूष' नामक ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित हो रहा है।

बहुत दिनोंसे मेरी प्रबल इच्छा थी कि श्रीराधाभावद्युति-सुवलित श्रीकृष्णस्वरूप श्रीशचीनन्दन गौरहरिका संक्षिप्त जीवन-चरित्र और उनकी शिक्षाओंको सरल-सहज-बोधगम्य हिन्दी भाषामें प्रकाशित किया जाय। तदनुसार मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हो रही है। आशा करता हूँ कि हिन्दी-भाषी लोग इस ग्रन्थके पठन-पाठनके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुके भक्तिमय आदर्श जीवन-चरित्रसे अवगत होकर भक्ति-राज्यमें सहज रूपसे अग्रसर हो सकेंगे।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, कम्पोजिङ्ग करने तथा विविध सेवा कार्योंके लिए श्रीमान् ओमप्रकाश ब्रजवासी, श्रीमान् पुरन्दर ब्रह्मचारी, श्रीमान् सुबल-सखा ब्रह्मचारी, श्रीमान् कृष्ण-कारुण्य ब्रह्मचारी, बेटी शान्ति दासी आदिकी सेवा प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय एवं उल्लेखनीय है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग श्रीगान्धर्विका-गिरिधारी श्रीराधा-विनोद-बिहारीजी इनपर प्रचुर आशीर्वाद वर्षण करें, उनके श्रीचरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है।

यह संस्करण अत्यन्त शीघ्रतासे प्रकाशित हो रहा है, जिससे इसमें कुछ मुद्रागत प्रमाद आदि त्रुटि-विच्युतियोंका रह जाना

अस्वाभाविक नहीं है। सुधी पाठकवृन्दके द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे। इति।

श्रीगौरपूर्णिमा
मार्च ६, २००४ ई॰

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

# प्रकाशकीय-वक्तव्य

## (द्वितीय-संस्करण)

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके कृपा-निर्देश एवं प्रेरणासे उन्हींके प्रीति-विधानके लिए गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन द्वारा 'श्रीचैतन्य-चरित्र-पीयूष' नामक ग्रन्थका द्वितीय संस्करण हिन्दी-भाषा-भाषी जनसाधारणके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

इस ग्रन्थके प्रथम-संस्करणको पाठकों द्वारा सहृदय ग्रहण करनेके कारण इसकी प्रतियाँ अतिशीघ्र ही समाप्त हो गयीं। प्रथम-संस्करणमें प्रस्तुत श्रीमन्महाप्रभुके लीला-क्रमको संशोधित करनेके साथ-साथ कुछ अतिरिक्त लीलाओंका समावेश करके इस द्वितीय-संस्करणको सम्वर्द्धित रूपसे नवकलेवर सहित प्रकाशित किया जा रहा है।

परमाराध्यतम गुरुपादपद्मके श्रीचरणकमलोंमें यही सकातर प्रार्थना है कि वे हमपर कृपा-आशीर्वाद वर्षण करें जिससे कि हम उनके आदेश-निर्देशके अनुसार उनके मनोऽभीष्ट बृहत्-मृदङ्गरूप ग्रन्थ-प्रकाशन सेवामें अधिकतर रूपसे निमितमात्र बन सकें। इति।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन
गोस्वामी महाराजकी
आविर्भाव-तिथि
२६ दिसम्बर, २०१३

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी
प्रकाशन-मण्डली

# पूर्वाभास

लगभग ५२७ वर्ष पूर्वकी बात है। उस समय भारतवर्षपर मुसलमानोंका राज्य था। हिन्दुओंपर अनेक प्रकारके अत्याचार हो रहे थे और वे निर्भीक रूपसे अपने धर्मका पालन नहीं कर पाते थे। किन्तु उससे भी अधिक दयनीय अवस्था वैष्णव-धर्मकी थी, क्योंकि मुसलमानोंके साथ-साथ पाषण्डी हिन्दुलोग भी वैष्णवोंके घोर विरोधी हो गये थे। मुसलमानोंका सङ्ग करते-करते उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी तथा उनका आचरण मुसलमानोंके जैसा ही हो गया था। वैसे तो उस समय वैष्णव ही गिने-चुने रह गये थे तथा जो थे भी, वे पाषण्डी लोगों द्वारा उपहास तथा अपमान किये जानेके कारण छिपकर ही भजन करते थे। यदि लोगोंको पता चल जाता कि यह व्यक्ति वैष्णव है, तो सभी लोग उससे घृणा करते थे तथा समाजसे उसका बहिष्कार कर देते थे।

उस समय पूर्व-भारतमें भगवती भागीरथीके सुन्दर तटपर बसा हुआ नवद्वीप-धाम विद्याका प्रधान केन्द्र था। नवद्वीपमें विद्या अध्ययनकर लोग स्वयंको धन्य मानते थे। वहाँपर बड़े-बड़े वैदान्तिक तथा नैयायिक पण्डित रहा करते थे, जो गीता-भागवत-पुराण-वेद आदि शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वे नित्यप्रति भागवत एवं गीता इत्यादिका पाठ करते थे। श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका रसमय परिपक्व (पका हुआ) फल है तथा रसिक भक्त उसका आस्वादनकर सदा-सर्वदा प्रेममें मत्त रहते हैं, परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह थी कि नवद्वीपके पण्डित लोग इसकी व्याख्या करते समय कहते कि मुक्ति ही गीता और श्रीमद्भागवतका चरम फल है। यद्यपि सभी शास्त्रोंका उद्देश्य भगवद्-भक्ति है, परन्तु वे लोग अपनी व्याख्याओंमें कहते कि शास्त्र हमें कर्म, ज्ञान एवं योगकी शिक्षा ही प्रदान करते हैं। इस प्रकार भक्तिका विचार प्रायः लुप्त हो चुका था। भक्तिके नामपर लोग नाक-भौंह सिकोड़ते थे।

उस समय लोग अपनी जागतिक वासनाओंको पूर्ण करनेके लिए भूत-प्रेतोंकी तथा देवी-देवताओंकी पूजा करने लगे थे। वे देवी-देवताओंके उद्देश्यसे पशुओंकी बलि भी चढ़ाते तथा पूजाके पश्चात् स्वयं ही मांस एवं मदिराका सेवन करते थे। सारी रात मद्यपानकर वे लोग देवी जागरण करते तथा उसके लिए प्रचुर धन खर्च करते थे। परन्तु भगवान्‌के उत्सव जैसे श्रीजन्माष्टमी इत्यादिमें किसीकी लेशमात्र भी रुचि नहीं थी।

उसी नवद्वीप नगरमें श्रीअद्वैताचार्य नामक एक महापुरुष निवास करते थे जो कि वैष्णव-धर्मके पालनमें रत थे। वे महाविष्णुके अवतार थे। भगवान्‌की इच्छासे ही वे इस जगत्‌में अवतीर्ण हुए थे। संसारकी ऐसी दुरावस्था देखकर तथा भक्ति एवं वैष्णव-धर्मकी उपेक्षा देखकर वे बहुत दुःखी रहते थे। वे समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता थे। अपने घरमें वे नित्य भागवत पाठ करते थे, जिसे सुननेके लिए नवद्वीपके वैष्णवजन वहाँपर एकत्रित होते थे। सारा दिन पाषण्डियोंके वाक्य-बाणों तथा अपमानसे उन वैष्णवोंका हृदय पीड़ित रहता था। परन्तु सन्ध्याके समय श्रीअद्वैताचार्यके श्रीमुखसे श्रीभगवान्‌की अमृतमयी कथाओंको श्रवणकर उनका हृदय कुछ समयके लिए सुशीतल हो जाता था तथा वे अपना सारा दुःख भूल जाते थे। नास्तिकताका प्राबल्य तथा वैष्णवोंका अपमान देखकर एक दिन श्रीअद्वैताचार्य क्रोधित होकर उपस्थित सभी वैष्णवोंसे कहने लगे—"आप सभी लोग ध्यानपूर्वक सुनें। यदि अतिशीघ्र ही प्रभुने इस जगत्‌में प्रकटित होकर इन पाषण्डियोंका उद्धार नहीं किया, तो मैं चतुर्भुजरूप धारणकर अपने चक्रसे इन सभी पापियोंका संहार कर डालूँगा।"

ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करके वे विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा प्रभु अतिशीघ्र इस जगत्‌में प्रकट होंगे। उसी समय उन्हें एक शास्त्र-वाणी (श्लोक) का स्मरण हो आया—

*तुलसी दलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।*
*विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥*

(हरिभक्तिविलास ११/११०)

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति एक तुलसीदलमात्र (तुलसीका पत्ता) तथा चुल्लूभर जल भगवान्‌को अर्पण करे, तो भक्तवत्सल भगवान् ऐसे भक्तके हाथों स्वयंको बेच देते हैं।

## श्रीमन्महाप्रभुके अवतारकी सूचना

**गौणकारण**—उसी समयसे श्रीअद्वैताचार्य नित्यप्रति एक तुलसीदल (तुलसीका पत्ता) तथा चुल्लूभर जल भगवान्‌को अर्पण करने लगे। उनकी भीषण प्रतिज्ञा एवं तीव्र आराधनाने भगवान्‌के सिंहासनको भी

हिला दिया। अपने ऐसे भक्तकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए श्रीकृष्ण इस जगत्में अवतरित होनेके लिए विचार करने लगे। वे विचार करने लगे कि—"मैं किस रूपमें अवतरित होऊँ? सत्य, त्रेता एवं द्वापरमें अवतरित होकर मैंने अपने चक्रके द्वारा भक्तोंके विरोधी असुरोंका विनाश किया, क्योंकि उन-उन युगोंमें असुर प्रवृत्तिके लोग नाममात्र थे, परन्तु इस कलियुगमें अधिकतर लोग ही आसुरिक भावके कारण भक्तोंके विरोधी हैं। यदि मैं चक्रसे ऐसे पापियोंको मारना प्रारम्भ करूँ तो समस्त सृष्टि ही समाप्त हो जायेगी। अतः मैं इस अवतारमें अस्त्र धारण नहीं करूँगा तथा किसीका भी संहार नहीं करूँगा। इस अवतारमें मेरा एकमात्र अस्त्र होगा—हरिनाम। अन्यान्य अवतारोंमें मैंने चक्रके द्वारा असुरोंका संहार किया। परन्तु इस कलियुगमें मैं हरिनामरूपी अस्त्रके द्वारा असुरोंको नहीं, बल्कि उनकी आसुरिकवृत्तिको नष्ट करूँगा तथा उनके चित्तको शुद्धकर उन्हें अपना नामके माध्यमसे प्रेम प्रदान करूँगा।"

**मुख्यकारण—**

*श्रीराधायाः प्रणय-महिमा कीदृशो वानयैवा-*
*स्वाद्यो येनाद्भुत-मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।*
*सौख्यञ्चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्-*
*तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥*

(श्रीचैतन्यचरितामृत, आदिलीला १/६)

व्रजलीलाके समय एकबार प्रेमसरोवरमें श्रीराधा-कृष्ण बैठे हुए थे। उसी समय एक भ्रमर आया और राधाजीके चरणोंमें मण्डराने लगा, जिससे वे भयभीत हो गयीं। उन्हें भयभीत देखकर कृष्ण मधुमङ्गलसे बोले—"मधुमङ्गल! इसे दूर भगा दो।" यह सुनकर मधुमङ्गल एक लाठी लेकर 'हो हो' करते हुए उस भ्रमरको दूर भगा आया तथा आकर बोला—"मैंने मधुसूदनको दूर भगा दिया है, वह अब कभी नहीं आयेगा।" भ्रमरका एक नाम मधुसूदन भी है, क्योंकि वह मधु अर्थात् शहदका आहरण करता है। कृष्णका एक नाम भी 'मधुसूदन' है, क्योंकि वे भी अपने भक्तोंके प्रेमरूपी मधुका आस्वादन करते हैं। अतः "मधुसूदन चला गया", यह सुनकर राधिकाजीने समझा

मधुसूदन अर्थात् कृष्ण मुझे छोड़कर चले गये हैं और अब कभी नहीं आयेंगे। अतः वे उनके विरहमें "हा मधुसूदन! हा मधुसूदन!" कहते हुए मूर्च्छित होकर कृष्णकी गोदीमें ही गिर पड़ी। यह देखकर कृष्ण अत्यधिक विस्मित हो गये। वे सोचने लगे—"बड़े आश्चर्यकी बात है। मैं इनके पास हूँ, फिर भी ये सोच रही हैं कि मैं दूर चला गया। केवल यह सुनकर कि मधुसूदन चला गया, ये अचेत हो गयीं। मुझे तो कभी ऐसा नहीं होता, जब कि मैं भी इनसे अथाह प्रेम करता हूँ। अतः इनके हृदयमें मेरे प्रति जो प्रेम है, अवश्य ही उसमें कुछ विशेष चमत्कारिता है। यदि मैं किसी प्रकारसे उसका अनुभव कर पाता?" इस प्रकार अपने प्रति श्रीराधाजीका प्रेम देखकर कृष्णके हृदयमें तीन इच्छाएँ जागृत हुईं—(१) श्रीराधाजीके प्रेमकी महिमा कैसी है? (२) मेरी मधुरिमा जिसे श्रीराधिका सदा-सर्वदा आस्वादन करती हैं, वह कैसी है? (३) मेरी मधुरिमाका आस्वादनकर श्रीराधाजीको कैसा आनन्द प्राप्त होता है? व्रजलीलामें श्रीकृष्णकी ये तीनों वाञ्छाएँ अपूर्ण रह गयी थी अतः अपनी इन तीनों इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए ही श्रीकृष्ण श्रीराधाजीके हृदयके भाव एवं उनकी अङ्गकान्तिको स्वीकार करके श्रीचैतन्यमहाप्रभुके रूपमें अवतरित हुए। रसिकशेखर श्रीकृष्ण परम कृपालु हैं। अतः उन्होंने प्रेमरसका निर्यास (सार) आस्वादन करने तथा रागमार्गयुक्त भक्तिका प्रचार करनेके लिए अवतरित होनेका निश्चय किया।

## जन्म-लीला

नवद्वीप नगरमें समस्त गुणोंसे विभूषित परम भक्तिमान एक ब्राह्मण निवास करते थे। उनका नाम श्रीजगन्नाथ मिश्र था। उनकी पत्नीका नाम श्रीशचीदेवी था। वे भी परम भक्तिमती और पतिव्रता नारी थी। उनके गर्भसे क्रमशः आठ कन्याओंने जन्म-ग्रहण किया, परन्तु वे सभी जन्मके थोड़े-थोड़े समय पश्चात् ही मर गयीं। इससे वे दोनों पति-पत्नी बहुत ही दुःखी रहते थे। कालक्रमसे श्रीशचीदेवीने नौवीं बार एक बालकको जन्म दिया। बालक बहुत ही सुन्दर था। उसके शरीरसे अद्भुत तेज निकल रहा था। वह स्वयं बलदेवजीका अंश

था। एक बार जो उस बालकका दर्शन कर लेता, वह उसके चित्त एवं मनको हरणकर उसे मुग्ध कर देता था। बालकके सुलक्षणोंको देखकर ज्योतिषीने उसका नाम विश्वरूप रखा। विश्वरूप बाल्यावस्थासे ही संसारसे विरक्त रहते थे। खेलकूदमें उनकी लेशमात्र भी रुचि नहीं थी। वे अपना सारा समय विद्या अध्ययनमें ही व्यतीत करते थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि एकबार सुननेमात्रसे ही कठिनसे कठिन विषयको याद कर लेते थे। जहाँ कहीं भी भगवान्‌की कथाओंकी चर्चा होती, वे तुरन्त वहाँ पहुँच जाते तथा ध्यानपूर्वक उन कथाओंको श्रवण करते। यहाँ तक कि वे खाना-पीना तथा घर जाना भी भूल जाते थे। उन्हें घरसे बुलानेके लिए किसीको भेजना पड़ता था। विश्वरूपके इन गुणों तथा भक्तिके प्रति उनकी रुचि देखकर सभी वैष्णवगण उन्हें बहुत ही स्नेह करते थे। वे सभी वैष्णव भगवान्‌से प्रार्थना करते—"हे प्रभो! इस बालकपर कृपा कीजिये, जिससे कि यह कभी भी आपको भूल न पाये।" इस प्रकार विश्वरूप धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

कुछ समय पश्चात् (तदानुसार १८ फरवरी वर्ष १४८६ में) फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथि अर्थात् होलीके दिन सन्ध्याके समय श्रीशचीदेवीके गर्भसे उनकी दसवीं सन्तानके रूपमें स्वयं-भगवान् अवतरित हुए। उस पूर्णिमाके दिन चन्द्रग्रहण भी लगा हुआ था। मानो राहू कह रहा था—"अरे चन्द्र! तुझपर कलङ्क (दाग) लगा हुआ है। आज इस जगत्‌में एक निर्मल और बेदाग चन्द्र अर्थात् गौरचन्द्र उदित हुए हैं। अतः अब तेरी आवश्यकता नहीं है।" ग्रहणके कारण सभी लोग यहाँ तक कि नास्तिक लोग भी 'हरि-हरि' बोलते हुए गङ्गास्नान करने लगे। चारों ओर उच्चस्वरसे हरिनामका कोलाहल होने लगा। इस प्रकार जन्म लेते ही प्रभु जिस कार्यके लिए अवतरित हुए थे, उसे आरम्भ कर दिया। अर्थात् प्रभुने ग्रहणके छलसे सभीके मुखसे हरिनामका उच्चारण करवा दिया।

अब सारे नवद्वीपमें समाचार फैल गया कि श्रीशचीमाताने द्वितीय पुत्रको जन्म दिया है। यह सुनकर सभी लोग श्रीजगन्नाथ मिश्रके घर आकर बालकका दर्शन करने लगे। जो भी एकबार प्रभुके मनोहर रूपका दर्शन कर लेता, वह मन्त्रमुग्ध हो जाता। प्रभुका दर्शन

करनेके लिए देवता तथा उनकी स्त्रियाँ भी ब्राह्मण एवं ब्राह्मणीका वेश धारणकर आने लगीं। श्रीशचीमाताके पिता श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उन्होंने बालकके लक्षणोंको देखकर बतला दिया था कि यह कोई साधारण बालक नहीं है। ऐसा लगता है कि यह भगवान्‌का अवतार ही है। यह समस्त संसारका भरण-पोषण करेगा। अतः इसका नाम विश्वम्भर होगा।

बालकके शरीरका रङ्ग गोरा होनेके कारण किसीने उसका नाम गौर रखा, तो स्त्रियोंने उस बालकका नाम निमाइ रखा। इसका कारण था कि उनसे पहले शचीमाताकी आठ कन्याओंको कालने ग्रास कर लिया था, उन्होंने विचार किया कि नीम कड़वा होता है, अतः इसका नाम निमाइ रखनेसे काल इसे ग्रास नहीं कर पायेगा। शिशु अवस्थासे ही प्रभु छल-बलसे सभीके मुखसे हरिनामका उच्चारण करवाने लगे थे। जब प्रभु रोने लगते तो किसी भी उपायसे चुप नहीं होते थे। यदि सभी लोग मिलकर हाथोंसे तालियाँ बजाते हुए 'हरिबोल-हरिबोल' कीर्त्तन करते, तो वे खिलखिलाकर हँसते हुए

स्वयं भी धीरे-धीरे ताली बजाने लगते। यह देखकर लोगोंको बहुत आश्चर्य होता था। कभी-कभी देवतागण भी अलक्षित रूपसे प्रभुका दर्शनकर धन्य होनेके लिए आते थे। उस समय वहाँपर उपस्थित लोग उन्हें स्पष्ट रूपसे देख नहीं पाते थे। उन्हें बालकके समीप मात्र कुछ परछाइयाँ-सी दिखायी पड़ती थीं, जिससे वे समझते थे कि ये कोई भूत-प्रेत हैं जो बालकका अनिष्ट करनेके लिए आये हैं। अतः सभी लोग भयभीत होकर भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करते हुए भगवान्‌को पुकारने लगते। यह देखकर देवतागण प्रसन्न होकर वहाँसे चले जाते।

अब धीरे-धीरे श्रीशचीमाता एवं श्रीजगन्नाथ मिश्रके समक्ष अनेक प्रकारकी अद्भुत एवं आश्चर्यजनक घटनाएँ घटने लगीं। कभी-कभी अकस्मात् उनका घर दिव्य प्रकाशसे भर जाता था। कभी उन्हें घरके भीतरसे नूपुरोंकी मधुर-ध्वनि सुनायी पड़ती थी, जब कि घरमें निमाइके अतिरिक्त और कोई नहीं होता था तथा उसके चरणोंमें भी नूपुर नहीं होते थे। कभी सारे घरमें सुन्दर चरणचिह्न दिखायी पड़ते, जिनमें ध्वज, वज्र, अंकुश इत्यादि चिह्न अङ्कित होते थे। इस प्रकारकी अलौकिक घटनाओंको देखकर वे दोनों आश्चर्यचकित हो जाते। वे सोचते कि हमारे घरमें जो दामोदर शालग्राम हैं, वे ही घरमें इधर-उधर घूमते हैं। इस प्रकार प्रभु धीरे-धीरे अपना ऐश्वर्य प्रकट करने लगे।

## सर्प-धारण

जैसे-जैसे प्रभु थोड़े बड़े होते जा रहे थे, उनकी चञ्चलता भी उतनी ही बढ़ रही थी। श्रीशचीमाताके लिए उन्हें सम्भालना ही कठिन हो जाता था। कभी वे आगकी ओर जाने लगते तथा कभी कुत्तेको पकड़कर उसका मुख खोलकर उसके मुखमें हाथ डाल देते और कुत्ता चुपचाप बैठा रहता। एकदिन प्रभु आङ्गनमें खेल रहे थे। श्रीशचीमाता घरके भीतर विभिन्न कार्योंमें व्यस्त थीं। उसी समय कहींसे एक भयङ्कर काला सर्प रेंगता हुआ आङ्गनमें आ गया। जैसे ही प्रभुकी नजर उसपर पड़ी, तो वे घुटनोंके बल

तेजीसे चलते हुए उसके पास पहुँच गये। सर्प चुपचाप कुण्डली मारकर तथा फन उठाकर बैठ गया। प्रभु झटसे उसके ऊपर बैठ गये तथा अपने एक हाथसे उसका फन पकड़कर हिलाने लगे। उसी समय श्रीशचीमाता अपने नटखट बालकको देखनेके लिए बाहर आयीं। जैसे ही उनकी नजर सर्पपर बैठे बालकपर पड़ी तो

वे भयसे व्याकुल हो गयीं और उनका चेहरा पीला पड़ गया। वे अपने लाड़ले पुत्रको बचानेके लिए चिल्लाते हुए सर्पकी ओर दौड़ी। वास्तवमें वह सर्प कोई साधारण सर्प नहीं बल्कि स्वयं शेषनागजी थे। वे अपने प्रभुका दर्शन एवं उनकी सेवाके लिए ही वहाँ आये थे। अतः जब उन्होंने श्रीशचीमाताको भयभीत देखा, तो वे धीरे–धीरे

सरकते हुए वहाँसे चल दिये। यह देखकर श्रीशचीमाताने राहतकी साँस ली। परन्तु प्रभु फिरसे उसी ओर जाने लगे, जिस ओर सर्प गया था। तब शचीमाताने दौड़कर उन्हें अपनी गोदीमें ले लिया और रोते-रोते उनका मुख चूमने लगीं।

## दो चोरोंपर कृपा

अब तो निमाइने चलना भी सीख लिया था। इसलिए सारा दिन दूसरे बच्चोंके साथ यहाँ-वहाँ घूमते हुए शरारतें करने लगे। किसीके घरमें घुसकर भात खा लेते, तो किसीके घरमें रखा हुआ दूध-दही चुराकर खा लेते और यदि किसीके घरमें कुछ नहीं मिलता तो गुस्सेमें भरकर घरमें रखे हुए मिट्टीके बर्तनोंको ही तोड़ डालते थे। किसीके घरमें बच्चा सो रहा होता, तो उसे रुलाने लगते, जब घरके लोग आ जाते तो सभी बच्चे वहाँसे भाग जाते। और यदि कभी किसी स्त्रीकी पकड़में आ भी जाते, तो बचनेका उपाय न देखकर बड़ी चतुराईके साथ उसके पैरोंको पकड़ लेते और कहते—"मैया! आज मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारी शपथ लेता हूँ, दोबारा तुम्हारे घरमें चोरी करने नहीं आऊँगा।" उनकी ऐसी बुद्धिको देखकर सभी लोग आश्चर्यमें पड़ जाते तथा उन्हें अपनी गोदीमें लेकर लाड़-प्यार करने लगते थे।

एक दिनकी बात है कि प्रभु अकेले ही घूमते-घूमते अपने घरसे बहुत दूर चले गये। उसी समय दो चोरोंकी दृष्टि उनपर पड़ी। प्रभुके शरीरमें धारण कराये गये अलङ्कारोंको देखकर उन चोरोंके मनमें लोभ जग गया और उन दोनोंने उन बहुमूल्य अलङ्कारोंको लूटनेकी योजना बनायी। इसलिए दोनों ही श्रीगौरसुन्दरके निकट पहुँचे और बोले—

चोर (बड़े प्यारसे)—"अरे बेटा! तुम अभी तक कहाँ थे? तुम्हारे घरके लोग कितनी देर-से तुम्हें खोज रहे हैं, घरमें सभी लोग तुम्हारे लिए चिन्तित हैं। चलो हम तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा देते हैं।"

गौरसुन्दर (मन-ही-मन मुसकराते हुए)—"बहुत अच्छा! मैं रास्ता भूल गया, मुझे मेरे घर पहुँचा दो।"

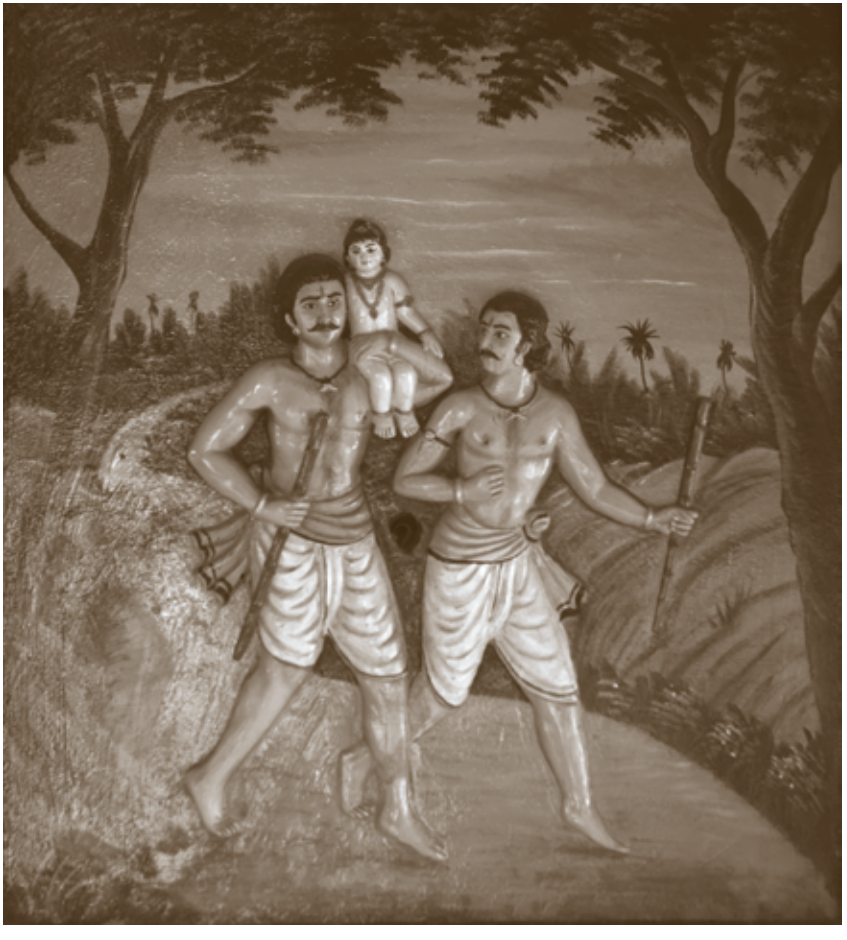

ऐसा कहकर प्रभु उनके कन्धेपर बैठ गये। अब तो चोरोंकी प्रसन्नताकी सीमा ही नहीं रही, क्योंकि उन्हें भय था कि यदि बच्चा रोया या चिल्लाया तो वे विपत्तिमें फँस जायेंगे। परन्तु गौरसुन्दर तो हँसते-हँसते जानेके लिए तैयार हो गये, इसलिए वे जल्दी-जल्दी गौरसुन्दरको कन्धेपर बैठाकर चलने लगे। उस समय रास्तेमें बहुत-से लोग आ-जा रहे थे, परन्तु किसीको भी उन चोरोंपर सन्देह नहीं हुआ। सभी लोग समझ रहे थे कि कोई अपने बच्चेको ले जा रहा है। बीच-बीचमें वे प्रभुको सन्देश (मिठाई) भी देते जा रहे

थे। वे दोनों चोर आपसमें बातें करते हुए अपने स्थानको जा रहे थे। एकने कहा मैं इसके हाथका कङ्कन और बाला लूँगा, दूसरेने कहा कि मैं गलेका हार लूँगा। इस प्रकार मन-ही-मन प्रसन्न होकर चलते-चलते वे बहुत दूर आ गये।

उधर निमाइको घर और आस-पड़ोसमें न पाकर श्रीजगन्नाथ मिश्र, श्रीशचीमाता तथा अन्यान्य लोग बालकको चारों ओर खोजने लगे। उनकी ठीक वैसी ही अवस्था हो गयी जैसे जलके बिना मछलीकी होती है। रोते-बिलखते हुए सभी लोगोंने भगवान्‌की शरण ली। उधर चोर तो आनन्दपूर्वक गौरसुन्दरको अपने घरकी ओर ले जा रहे थे, परन्तु भगवान्‌की मायासे मोहित होकर रास्ता भूल गये और प्रभुके घरकी ओर ही चल पड़े।

प्रभुके घरको अपना घर जानकर उन्होंने सोचा कि हमारा घर आ गया है। अतः वे बोले—"बेटा! नीचे उतरो, तुम्हारा घर आ गया है।"

गौरसुन्दर (हँसते हुए)—"हाँ-हाँ, मुझे नीचे उतारो। मेरा घर आ गया है।" ऐसा कहकर निमाइ नीचे उतरे तथा दौड़कर श्रीजगन्नाथ मिश्रकी गोदीमें चढ़ गये। अचानक निमाइको कुशलपूर्वक घर आया हुआ देखकर सभीके मुखपर प्रसन्नता उमड़ आयी तथा सबने बालकको घेर लिया। इधर दोनों चोर हक्के-बक्के रह गये। उन्हें कुछ भी सूझ नहीं रहा था कि यह क्या हुआ? वे सोचने लगे कि हम अपने घरका रास्ता भूलकर यहाँ कैसे आ गये? अपने पकड़े जानेके भयसे वे भागनेका अवसर देखने लगे। उन्होंने देखा कि सभी लोग आनन्दमें डूबकर बालकको घेरे हुए हैं, किसीका भी ध्यान उनकी ओर नहीं है। अतः उपयुक्त अवसर जानकर दोनों वहाँसे जान बचाकर भागे। भागते-भागते आपसमें कहने लगे—"आज अवश्य ही हमपर किसीने जादू कर दिया है। यह तो चण्डीदेवी हैं, जिनकी कृपासे जान बच गयी। इस प्रकार वे महा-भाग्यवान चोर जिनके कन्धेपर स्वयं-भगवान्‌ने आरोहण (सवारी) किया, अपनेको सुरक्षित देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

इधर कुछ देर बाद सभीने विचार किया कि जो निमाइको सुरक्षित लेकर आया है, उसे पुरस्कार देना चाहिये। अतः सभी लोग इस

विषयमें इधर-उधर पूछने लगे, परन्तु कोई भी "हाँ, मैं लाया हूँ" नहीं बोला। इतनेमें एक व्यक्तिने कहा—"मैंने देखा कि दो लोग निमाइको अपने कन्धेपर यहाँ तक छोड़कर चले गये।" तब सभी निमाइसे ही पूछने लगे—

श्रीजगन्नाथमिश्र—"बेटा निमाइ! तू कहाँ चला गया था तथा तुझे यहाँ तक कौन छोड़ गया है?"

निमाइ—"मैं गङ्गा स्नान करनेके लिए गया था, परन्तु लौटते समय रास्ता भटक गया और नगरमें यहाँ-वहाँ घूमने लगा। उसी समय मेरे पास दो व्यक्ति आये। उन्होंने मुझसे बड़े प्यारसे कहा कि हम तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा देंगे, ऐसा कहकर वे मुझे अपने कन्धेपर बैठाकर घुमाते-फिराते हुए यहाँ तक छोड़ गये।"

यह सुनकर वहाँपर उपस्थित सभी लोग कहने लगे कि शास्त्रोंमें सत्य ही कहा गया है कि शिशु, वृद्ध एवं अनाथ लोगोंकी भगवान् स्वयं रक्षा करते हैं। इस प्रकार भगवान्‌की मायासे मोहित होनेके कारण कोई भी श्रीगौरसुन्दरको पहचान नहीं पा रहा था। सभी उन्हें एक साधारण बालक मान रहे थे। भगवान्‌की इच्छाके बिना कोई भी उन्हें जान नहीं सकता। यही भगवान्‌की महिमा है।

## तैर्थिक ब्राह्मणपर कृपा

एक दिन एक ब्राह्मण तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ नवद्वीप नगरमें उपस्थित हुआ। वह गोपालमन्त्रके द्वारा श्रीकृष्णकी उपासना करता था। उसने अपने गलेमें बालगोपाल एवं शालग्रामशिलाको लटकाया हुआ था। उसके शरीरसे अद्भुत तेज निकल रहा था तथा वह सब समय अपने मुखसे कृष्ण-कृष्ण उच्चारण कर रहा था। वह महाभाग्यवान ब्राह्मण नवद्वीपमें घूमते-घूमते जब श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरपर उपस्थित हुआ, तो श्रीजगन्नाथ मिश्र उसके अद्भुत तेजको देख झट उठकर खड़े हो गये और उसे प्रणाम किया। तत्पश्चात् उसके हाथ-पैर प्रक्षालन कराकर (धुलवाकर) उसे बैठनेके लिए सुन्दर आसन प्रदान किया। जब वह ब्राह्मण सुखपूर्वक बैठ गया, तब श्रीजगन्नाथ मिश्रने पूछा—

"हे ब्राह्मण! आपका निवास स्थान कहाँ है?"

ब्राह्मण—"मैं एक विरक्त देशान्तरी (अपने देशको छोड़कर अन्य स्थानोंमें घूमनेवाला) हूँ तथा चित्त विक्षिप्त होनेके कारण भ्रमण करता रहता हूँ।"

मिश्र (ब्राह्मणको प्रणाम करते हुए)—"यह तो आपकी दीनता है। आप जैसे महात्माओंका चित्त चञ्चल नहीं होता, बल्कि आप जैसे महापुरुष तो जगत्के जीवोंके कल्याणके लिए ही भ्रमण करते हैं। विशेष रूपसे आज तो मेरा ही परम सौभाग्य है कि आज आप मेरे घरपर पधारे हैं। आप स्व-पाकी ब्राह्मण (स्वयं ही अपना भोजन बनावाले) है, अतः आप मुझे आदेश प्रदान करें कि मैं आपके लिए रन्धन-सामग्रीकी व्यवस्था करूँ।"

ब्राह्मण—"मिश्र! जैसी आपलोंगोकी इच्छा हो, वैसा ही कीजिये।"

ब्राह्मणकी अनुमति प्राप्त होनेपर श्रीजगन्नाथ मिश्र एवं घरके अन्य लोंगोको बहुत प्रसन्नता हुई। शीघ्र ही रसोईघरको साफकर रन्धनका सारा सामान वहाँपर रख दिया गया।

तैर्थिक विप्रने प्रसन्नतापूर्वक रसोई बनायी तथा जब वह श्रीकृष्णको भोग लगानेके लिए बैठा तो अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी विप्रको दर्शन देनेकी इच्छा हुई। इसलिए जब वह विप्र अपनी आँखें बन्दकर श्रीकृष्णका ध्यान करने लगा, ठीक उसी समय श्रीगौरसुन्दर उसके सामने आ गये। उस समय श्रीगौरसुन्दर (निमाइ) का शरीर धूलसे लथ-पथ हो रहा था। उन्होंने हँसते हुए भोग लगाये गये अन्नमेंसे एक मुट्ठी अन्न लेकर खा लिया। आहट सुनकर जब विप्रने आँखें खोलीं तो नङ्ग-धड़ङ्ग अवस्थामें एक बालकको भोगको जूठा करते हुए देखकर वह चिल्लाने लगा। "हाय! हाय! इस नटखट बालकने भगवान्का भोग जूठा कर दिया।"

उसकी चिल्लाहट सुनकर श्रीजगन्नाथ मिश्र दौड़े-दौड़े वहाँपर आये तो देखा कि निमाइ भोग खा रहा है तथा हँस रहा है। यह देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्र बहुत क्रोधित होकर निमाइको पीटनेके लिए दौड़े। परन्तु उस ब्राह्मणने उन्हें रोक दिया तथा नम्रतापूर्वक बोला—"हे मिश्र! यह तो एक अज्ञ (नासमझ) बालक है, इसे अच्छे-बुरेका क्या ज्ञान? आप तो एक समझदार व्यक्ति हैं, अतः थोड़ा विचार तो कीजिये, क्या मारनेसे बालकको ज्ञान होगा? दण्ड उसे दिया

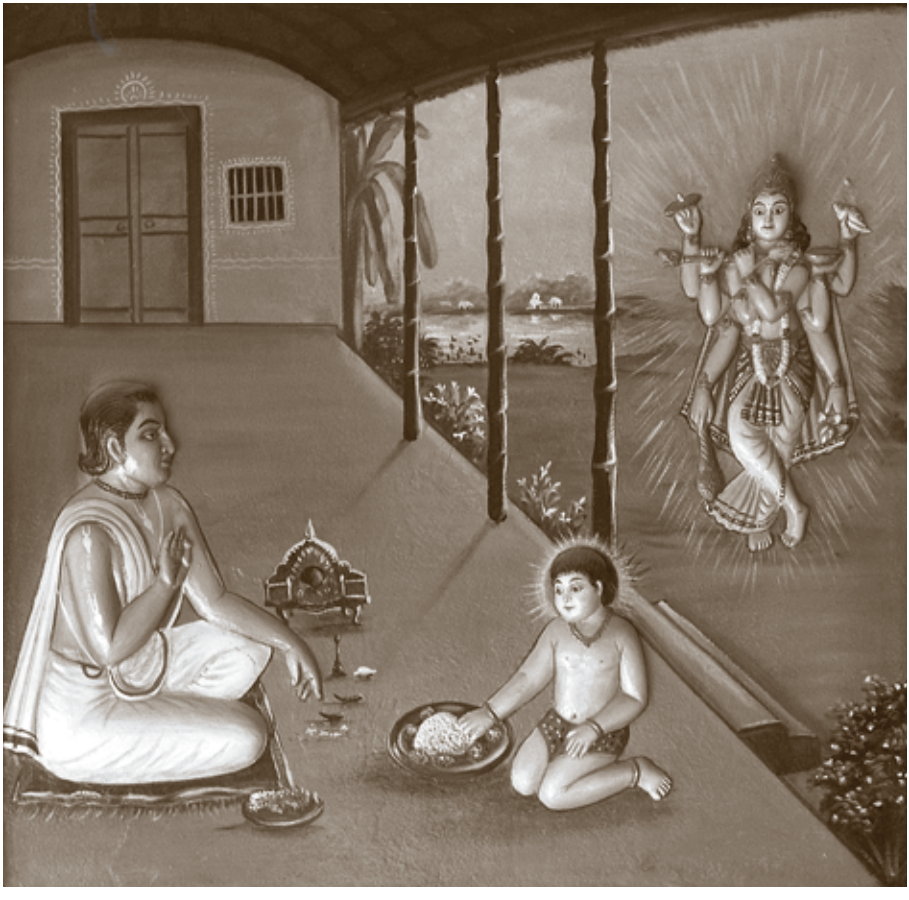

जाता है, जिसे कुछ ज्ञान हो। इसलिए आपको मेरी शपथ है, जो आपने इसे मारा।"

यह सुनकर मिश्र दुःखपूर्वक अपने सिरपर हाथ रखकर सिर नीचा करके बैठ गये। अब वे तैर्थिक ब्राह्मणसे क्या कहें, वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे। उन्हें इस प्रकार शोकमग्न देखकर विप्र स्वयं ही बोला—"हे जगन्नाथ मिश्रजी! आप दुःखी मत होइये। एकमात्र भगवान् ही जानते हैं कि किस दिन क्या होगा, अतः जो हुआ उसे भगवान्‌की इच्छा जानकर प्रसन्न हो जाइये तथा आपके घरमें यदि कुछ फल-मूल हों, तो ले आइये, मैं आज वही ठाकुरजीको निवेदन करूँगा।"

जगन्नाथ मिश्र (दीनतापूर्वक)—"हे विप्रवर! यदि आपकी मेरे तथा मेरे परिवारके प्रति कृपादृष्टि है तथा आप हमें अपना सेवक मानते हैं, तो हम सबकी प्रसन्नताके लिए आप एक बार पुनः रसोई बनाकर अपने गोपालजीको भोग लगायें तथा उनका प्रसाद ग्रहण करें।"

ब्राह्मण—"यदि आप लोगोंकी इसीमें प्रसन्नता है, तो मैं आप लोगोंकी प्रसन्नताके लिए अवश्य ही पुनः रसोई बनाऊँगा।"

यह सुनकर सभी लोग आनन्दित हो उठे तथा उन्होंने जल्दी-जल्दी रन्धनके लिए द्रव्योंको पुनः प्रस्तुत कर दिया। जब ब्राह्मणने पुनः रसोई बनाना आरम्भ किया तो सभी लोग कहने लगे—"यह निमाइ बहुत चञ्चल है। कहीं यह पुनः भगवान्‌का भोग नष्ट न कर दे, इसलिए जब तक ब्राह्मण भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसाद नहीं पा लेता है, तब तक इसे घरसे दूर रखना चाहिये।" यह सुनकर श्रीशचीमाता निमाइको गोदमें लेकर पड़ोसके घर चली गयीं। वहाँपर सभी स्त्रियाँ मिलकर निमाइको चिढ़ाने लगीं।

स्त्रियाँ—"अरे निमाइ! क्या इस प्रकार ब्राह्मणका अन्न खाया जाता है?"

निमाइ (हँसते हुए)—"इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। ब्राह्मणने स्वयं ही मुझे बुलाया, इसीलिए मैं चला गया।"

स्त्रियाँ—"अरे निमाइ चोर! न जाने वह ब्राह्मण किस कुलका है तथा कहाँ का है। परन्तु तूने आज उसके हाथका पकाया हुआ अन्न खा लिया है, इसलिए तेरी तो जाति ही नष्ट हो गयी है, अब तू क्या करेगा?"

निमाइ (हँसते हुए)—"आप लोग कैसी बातें कर रही हैं? मैं तो गोपजातिका एक ग्वाला हूँ तथा सदा-सर्वदा ब्राह्मणके हाथका ही खाता हूँ। अतः कुछ विचार तो करो, ब्राह्मणके हाथका खानेसे कहीं ग्वालेकी जाति नष्ट होती है?"

इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर छलपूर्वक स्वयं अपना परिचय दे रहे थे, परन्तु भगवान्‌की मायासे मोहित होनेके कारण कोई भी उनकी बातें समझ नहीं पा रहा था। उनकी ऐसी अनोखी बातें सुनकर सभी हँसने लगी।

उधर ब्राह्मणने पुनः रसोई बनायी। जब वह गोपालजीको भोग निवेदनकर आँखें बन्दकर उनका ध्यान कर रहा था, तो अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर जान गये। अतः सभी लोगोंको मोहितकर वे हँसते-हँसते ब्राह्मणके निकट पहुँच गये तथा उन्होंने भोगपात्रमेंसे एक मुट्ठी अन्न लेकर खा लिया। आहट सुनकर ब्राह्मणने आँखें खोलीं तो पुनः उसी बालकको भोग जूठा करते देखकर चिल्लाने लगा—"हाय! हाय! इस चञ्चल बालकने फिरसे भोग नष्ट कर दिया।"

उसकी हाय! हाय! सुनकर जैसे ही श्रीजगन्नाथ मिश्र वहाँपर पहुँचे, वैसे ही गौरसुन्दर वहाँसे भाग खड़े हुए। मिश्र उन्हें पीटनेके लिए उनके पीछे दौड़े।

मिश्र (क्रोधित होकर)—"अरे दुष्ट बालक! तेरी दुष्टता बहुत बढ़ गयी है। अतः आज मैं तुझे पीटकर तेरी बुद्धिको ठीक करता हूँ।" ऐसा कहते हुए जब वे गौरसुन्दरके पीछे दौड़े, तो उस समय ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंने उन्हें रोक लिया। परन्तु मिश्रका क्रोध शान्त नहीं हुआ।

मिश्र—"तुमलोग मुझे छोड़ दो, आज मैं इस दुष्ट बालकको अच्छी तरह सबक सिखाकर ही रहूँगा।"

लोग—"हे मिश्र! यह आप क्या करने जा रहे हैं? आप तो परम दयालु हैं। यदि आप ऐसे निर्बोध बच्चेको पीटते हैं, तो आपकी दयालुता एवं समझदारी कहाँ रही। इसका कारण है कि जो ऐसे अच्छे-बुरेके ज्ञानसे रहित एक अबोध बालकको पीटता है, वह भी तो एक अबोध ही हुआ। निमाइ तो बालक है, अतः चञ्चलता तो उसका स्वभाव ही है।"

वहाँ उपस्थित लोगोंकी बातें सुनकर भी जब जगन्नाथ मिश्रका क्रोध शान्त नहीं हुआ, तो उस ब्राह्मणने शीघ्र ही वहाँपर आकर जगन्नाथ मिश्रका हाथ पकड़ लिया तथा अत्यन्त नम्र एवं मधुर वचनोंसे बोला—

"हे जगन्नाथ मिश्र! इस बालकका कोई दोष नहीं है। आप व्यर्थ ही उसपर क्रोध कर रहे हैं। वास्तवमें आज मेरे भाग्यमें भगवान्ने अन्न लिखा ही नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि मैंने दो बार रसोई बनायी, परन्तु इस बच्चेने दोनों बार उसे जूठा कर दिया।"

यह सुनकर श्रीजगन्नाथ मिश्रका क्रोध शान्त तो हुआ, परन्तु दुःखी एवं लज्जित होकर जब वे सिर नीचाकर कुछ विचार कर ही रहे थे कि उसी समय उनके बड़े पुत्र विश्वरूप वहाँपर आ पहुँचे। उस समय उनके शरीरसे दिव्य तेज निकल रहा था, समस्त अङ्गोंसे लावण्य झलक रहा था तथा उनके गलेमें यज्ञसूत्र (उपवीत) सुशोभित हो रहा था। विश्वरूपके उस अपूर्वरूपका दर्शनकर तैर्थिक ब्राह्मण मोहित हो गया तथा एकटक उन्हें निहारने लगा। कुछ क्षण तक इसी प्रकार निहारनेके पश्चात् ब्राह्मणने पूछा—"ये किनके पुत्र हैं?"

लोग—"यह श्रीजगन्नाथ मिश्रका पुत्र है।"

यह सुनकर वह ब्राह्मण विश्वरूपको अपने वक्षःस्थलसे लगाकर कहने लगा—"वे माता-पिता धन्य हैं, जिनका ऐसा गुणवान एवं रूपवान पुत्र है।"

विश्वरूप भी तैर्थिक ब्राह्मणको प्रणामकर बोले—"अहो! आज हमारा परम सौभाग्य है कि आज आप हमारे घर अतिथिके रूपमें पधारे हैं, क्योंकि आप जैसे अतिथि तो बहुत जन्मोंके सौभाग्यके फलसे ही प्राप्त होते हैं। वास्तवमें आप जैसे महात्माओंका भ्रमण तो जगत्-कल्याणके लिए ही होता है। आप जैसे महात्मा अपने स्वार्थके लिए या विषयभोगके उद्देश्यसे भ्रमण नहीं करते, बल्कि विषयभोगोंमें आसक्त संसारी लोगोंको कृष्णसेवामें उन्मुख करनेके लिए ही भ्रमण करते हैं। परन्तु विषय-भोगोंमें आसक्त दुर्भागे लोग आप जैसे महात्माओंको भी अपने जैसा भोगी मानकर आप लोगोंका अनादर करते हैं तथा इस प्रकार अपने लिए नरकका द्वार खोल देते हैं। आज हमारा परम सौभाग्य है कि आप हमारे अतिथि हुए हैं, परन्तु उससे अधिक हमारा दुर्भाग्य है कि आप जैसे अतिथि हमारे घरमें अभी तक भूखे हैं। आप जैसे अतिथि जिसके घरमें भूखे रह जायँ, क्या कभी उस घरका मङ्गल हो सकता है? आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया, परन्तु अपने छोटे भाईकी नटखटता सुनकर बहुत दुःखी हूँ।"

ब्राह्मण—"विश्वरूप! इसके लिए तुम दुःख मत करो। तुम्हारे घरमें कुछ फल-मूल हो, तो ले आओ, आज मैं वही खाकर अपना निर्वाह कर लूँगा। फिर मैं तो एक वनवासी हूँ और प्रायः

फल-मूल खाकर ही रहता हूँ, इसलिए तुम मेरी चिन्ता मत करो। वैसे भी तुम्हारे दर्शनसे मेरा मन प्रसन्न हो गया है। तुम्हारा दर्शनकर तो मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैंने करोड़ों बार भोजन कर लिया है। अतः जाओ घरके भीतरसे कुछ फल-मूल ले आओ, आज मैं गोपालको वही निवेदन कर उसे ही ग्रहण कर लेता हूँ।"

विश्वरूप (सकुचाते हुए)—"हे विप्रवर! मुझे कहते हुए भी भय लग रहा है, किन्तु आप तो दयाके सागर हैं। आप जैसे साधुओंका स्वभाव ही है कि वे दूसरोंका दुःख देखकर दुःखी हो जाते हैं। इसलिए यदि कृपाकर आप एकबार पुनः रसोई बनाकर गोपालको अर्पणकर प्रसाद ग्रहण करें, तो मेरा एवं मेरे सारे परिवारका दुःख दूर हो जायेगा तथा सभीको परम आनन्द होगा।"

ब्राह्मण—"देखो, मैंने दो बार रसोई बनायी, परन्तु श्रीकृष्णने दोनों बार मुझे खाने नहीं दिया। इसलिए मुझे लगता है कि आज श्रीकृष्णकी इच्छा नहीं है कि मैं अन्न खाऊँ। अतः इस विषयमें प्रयत्न करना व्यर्थ ही है, क्योंकि घरमें खाने-पीने एवं भोगकी समस्त वस्तुएँ उपलब्ध होनेपर भी यदि कृष्णकी इच्छा नहीं हो, तो लाख बार प्रयास करनेपर भी कोई लेशमात्र भी भोग नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त बहुत देर भी हो गयी है, इसलिए इस समय क्या रसोई करना उचित है?"

विश्वरूप (ब्राह्मणके चरण पकड़कर)—"हे विप्रवर! इसमें कोई दोष नहीं है, यदि आप एक बार पुनः रसोई बनाते हैं तो हम सभीको आनन्द होगा।"

विश्वरूपके ऐसे नम्र व्यवहारसे मोहित होकर विप्र पुनः रसोई बनानेके लिए तैयार हो गया। सभी लोगोंने जब रसोईघरको लीपकर रन्धनका सारा सामान प्रस्तुत कर दिया, तो ब्राह्मणने फिरसे रसोई बनाना आरम्भ किया। अब घरके सभी लोग निमाइके विषयमें विचार करने लगे कि कहीं वह इस बार फिरसे भोग नष्ट न कर दे। सबने देखा कि इस समय निमाइ एक कमरेमें छिपा है। तब श्रीजगन्नाथ मिश्रने उस कमरेका द्वार बन्दकर दिया तथा स्वयं दरवाजेके बाहर बैठकर पहरा देने लगे। घरकी स्त्रियाँ कहने लगीं कि अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है, क्योंकि निमाइ कमरेमें सो

गया है तथा बाहरसे दरवाजा भी बन्द है। इस प्रकार सभी लोग निश्चिन्त हो गये।

इधर कुछ समय पश्चात् ब्राह्मणने पुनः रसोई बनायी और वह गोपालजीको भोग लगाने लगा। अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन जान गये। उनकी इच्छा विप्रको दर्शन देने की तो थी ही। अतः उनकी इच्छासे निद्रादेवीने वहाँपर उपस्थित सभी लोगोंको वशीभूत कर लिया, जिससे सभी लोग गम्भीर निद्रामें सो गये। अब निमाइ पुनः उस विप्रके सामने आ गये, जहाँपर वह गोपालजीको भोग निवेदन कर रहा था। जैसे ही उस विप्रकी दृष्टि निमाइपर पड़ी तो वह घबराकर चिल्लाने लगा—"हाय! हाय! यह चञ्चल बालक फिर आ गया।"

परन्तु वहाँ तो सभी लोग भगवान्‌की इच्छासे सो रहे थे, अतः उसकी चीख-पुकार सुननेवाला कौन था? उसे इस प्रकार चिल्लाते हुए देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर बोले—"हे विप्र! तुम बड़े भोले-भाले हो। पहले तो तुम मेरा मन्त्र जपकर मुझे आह्वान करते हो, जिस कारण मैं तुम्हारे निकट आकर तुम्हारे द्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किये गये भोगको ग्रहण किये बिना रह नहीं पाता। परन्तु जब मैं भोग ग्रहण करने लगता हूँ, तो तुम हाय! हाय! करते हो। इसका कारण यह है कि तुम मुझे पहचान नहीं पाये हो। तुम्हारे हृदयमें सदा-सर्वदा मेरे दर्शनकी अभिलाषा रहती है, तुम्हारी ऐसी उत्कण्ठाको देखकर ही मैं तुम्हें दर्शन देनेके लिए आया हूँ। अतः तुम मेरे स्वरूपका दर्शन करो।"

उसी क्षण उस विप्रने भगवान्‌के अपूर्व अष्टभुज रूपका दर्शन किया। उन्होंने चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण कर रखे थे। उनके एक हाथमें मक्खन था, जिसे वे दूसरे हाथसे खा रहे थे। इसके अतिरिक्त वे दो हाथोंसे मुरली बजा रहे थे। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी, समस्त अङ्गोंमें रत्नजड़ित अलङ्कार एवं सिरपर मोरपङ्ख सुशोभित हो रहा था। उनके गलेमें वैजयन्ती माला, कानोंमें मकराकृत कुण्डल तथा श्रीचरणकमलोंमें रत्नजड़ित नूपुर सुशोभित हो रहे थे। अगले ही क्षण विप्रने देखा कि वे एक कदम्ब-वृक्षके नीचे खड़े होकर मधुर वंशी बजा रहे हैं तथा चारों ओरसे गोप, गोपियाँ तथा गायें उन्हें घेरकर अपलक

नेत्रोंसे उन्हें प्रेमपूर्वक निहार रहे हैं। इसके अतिरिक्त वह विप्र जैसा ध्यान करता, वैसा ही साक्षात् दर्शन करने लगा। भगवान्‌के ऐसे अपूर्व ऐश्वर्यका दर्शनकर वह सौभाग्यशाली विप्र आनन्दसे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा।

करुणाके सागर श्रीगौरसुन्दरने जब अपने कोमल श्रीहस्तकमलसे उस विप्रको स्पर्श किया तो, उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी। परन्तु आनन्दसे जड़वत् हो जानेके कारण उसके मुखसे एक शब्द भी न निकला। उसके शरीरमें अष्टसात्त्विक भाव प्रकट होने लगे, आनन्दसे उसका शरीर काँपने लगा, सारे शरीरसे पसीना बहने लगा और आँखोंसे गङ्गा-यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अगले ही क्षण वह सौभाग्यवान विप्र प्रभुके श्रीचरणकमलोंसे लिपटकर जोर-जोरसे रोने लगा। उसकी ऐसी व्याकुलता देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर हँसते-हँसते बोले—"हे विप्र! तुम मेरे अनेक जन्मोंके दास हो। द्वापरयुगमें भी मैंने तुम्हें नन्दगृहमें इसी प्रकार दर्शन दिया था, परन्तु तुम्हें इसकी स्मृति नहीं है। जब मैं गोकुलमें नन्दगृहमें अवतरित हुआ था, तो उस समय भी सौभाग्यवश भ्रमण करते-करते तुम श्रीनन्दमहाराजके घरमें उपस्थित हुए थे तथा तुमने इसी प्रकार रसोई बनाकर मुझे भोग अर्पण किया था और मैंने इसी प्रकार तुम्हें दर्शन दिया था। तुम मेरे जन्म-जन्मोंके दास हो इसीलिए मैंने तुम्हें दर्शन दिया है। मेरे दासके अतिरिक्त कोई भी मेरा दर्शन नहीं कर सकता।

युगधर्म हरिनाम-सङ्कीर्तनका प्रचार करनेके लिए मैं इस धरा-धामपर अवतरित हुआ हूँ। इसके माध्यमसे मैं लोगोंके घर-घर जाकर उन्हें वह अमूल्य वस्तु प्रदान करूँगा जो कि शिव, ब्रह्मा एवं देवताओंके लिए भी दुर्लभ है। तुम इन समस्त लीलाओंका स्वयं दर्शन करोगे। परन्तु सावधान! जब तक मैं इस धरा-धामपर लीलाएँ करूँगा, तब तक यह रहस्य तुम किसीसे मत कहना। यदि तुमने इन सब बातोंको किसीके सामने प्रकट किया तो मैं तुम्हारा सर्वनाश कर दूँगा।"

इस प्रकार उस ब्राह्मणपर कृपा करनेके पश्चात् श्रीगौरसुन्दर पुनः अपने कक्षमें जाकर सो गये तथा ब्राह्मण प्रेममें आविष्ट होकर रोते-रोते प्रसाद पाने लगा। जब निद्रादेवीने सभी लोगोंको अपने प्रभावसे मुक्त कर दिया, उस समय सभीने देखा कि ब्राह्मणने निर्विघ्न

रूपसे प्रसाद पा लिया है तथा निमाइ भी घरके भीतर आरामसे सो रहा है। यह देखकर सभी बहुत आनन्दित हुए। ब्राह्मणकी बड़ी इच्छा हो रही थी कि वह इन लोगोंको बताये कि उनका निमाइ कोई साधारण बालक नहीं है। निमाइके रूपमें उनके घरमें स्वयं कृष्ण ही आविर्भूत हुए हैं। अतः उन्हें अपना बालक समझकर शासन मत करना, सभी लोग अच्छी प्रकारसे उनकी सेवाकर अपने जीवनको सार्थक करें। परन्तु प्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन होनेके भयसे ब्राह्मण चुप रह गया। अब वहाँसे विदा होकर कहीं अन्यत्र न जाकर वह गुप्त रूपसे नवद्वीपमें ही निवास करने लगा। कभी-कभी प्रभुके दर्शनके लिए मधुकरीके बहाने श्रीजगन्नाथ मिश्रके घर आ जाता था। इस प्रकार वह आनन्दपूर्वक भगवान्‌की लीलाओंका दर्शन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

## भक्तिविमुख एवं वैष्णव-विद्वेषी ब्राह्मणोंको दण्ड

अब निमाइ कुछ बड़े हो चुके थे, अतः मिश्रने उन्हें विद्या अध्ययनके लिए विद्यालयमें भेज दिया। उनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि एकबार सुननेमात्रसे ही उन्हें सब कुछ स्मरण हो जाता था। वे अपनेसे उच्च कक्षाके छात्रोंको भी बातों ही बातोंमें हरा देते थे। यह देखकर सभी आश्चर्यचकित रहे जाते थे।

विद्यालयसे वापस आते समय निमाइ अपने मित्रोंके साथ गङ्गामें अनेक प्रकारकी जलक्रीड़ाएँ करते थे। यदि वे देख लेते कि कोई भक्तिरहित एवं वैष्णव-विद्वेषी ब्राह्मण जलमें खड़ा होकर सूर्यको जल दे रहा है या मन्त्र जप कर रहा है, तो वे जलके नीचे-नीचे तैरते हुए जाते तथा उसका पैर पकड़कर खींचते हुए उसे गहरे पानीमें ले जाकर छोड़ देते। जब वह ब्राह्मण चिल्लाने लगता, तो वे जलके नीचे-नीचे तैरते हुए बहुत दूर निकलकर ठठाकर हँसने लगते तथा उनके मित्र बालक भी तालियाँ बजाकर उस ब्राह्मणका उपहास करने लगते थे।

कभी शीतके दिनोंमें यदि कोई ब्राह्मण गङ्गामें स्नान कर रहा होता था, तो निमाइ तटपर खड़े होकर उसके बाहर निकलनेकी प्रतीक्षा करते थे। जैसे ही वह बेचारा सर्दीसे ठिठुरते हुए बाहर

निकलता, ये उसके ऊपर मिट्टी फैंक देते या उसके ऊपर कुल्ला कर देते या उसे स्पर्श कर देते, जिससे कड़ाके की सर्दीमें उसे पुनः स्नान करना पड़ता था। कभी कोई ब्राह्मण अपना आसन एवं पूजाका सामान तटपर रखकर स्नान कर रहा होता था, तो ये उसका आसन, पञ्चपात्र आदि गङ्गाजीमें बहा देते। कभी कोई ब्राह्मण गङ्गाजीमें स्नान कर रहा होता था, तो ये छलाङ्ग लगाकर उसके कन्धेपर चढ़ जाते तथा "मैं ही शिव हूँ", कहकर जलमें कूद जाते। कभी कोई ब्राह्मण गङ्गा तटपर शिवलिङ्ग रखकर स्नान कर रहा होता, तो ये उसका शिवलिङ्ग ही चुरा लेते थे। कभी कोई ब्राह्मण विष्णुपूजाकी सामग्री—पुष्प, दुर्वा, नैवेद्य, आसन आदि तटपर रखकर गङ्गामें स्नान कर रहा होता, तो निमाइ उसके आसनपर बैठकर अपने मस्तकपर चन्दन लगा लेते तथा फल-मिठाई आदि खाकर भाग जाते। और जब वह ब्राह्मण गङ्गाजीसे बाहर आकर यह सब देखकर दुखी होकर 'हाय हाय' करने लगता, तो ये थोड़ी दूरीपर खड़े होकर कहते—"अरे ब्राह्मण देवता! आप दुखी क्यों हो रहे हैं? जिसके लिए आप यह सब लाये थे, उसीने सब ग्रहण कर लिया।" यह सुनकर जब वह ब्राह्मण क्रोधसे इन्हें पकड़ने जाता तो ये उसे मुँह चिढ़ाकर हँसते हुए भाग जाते।

यद्यपि पाषण्डी ब्राह्मणोंको प्रभु नाना प्रकारसे सताते थे, परन्तु वे कभी भी किसी वैष्णवका अपमान नहीं करते थे। मार्गमें किसी वैष्णवका दर्शन करनेपर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करते थे। यदि कभी किसी वृद्ध वैष्णवको गङ्गामें स्नान करते हुए देखते, तो उनके पास जाकर उनकी धोती आदि वस्त्रोंको धो देते तथा उनके साथ जाकर स्वयं उनके वस्त्र तथा लोटा आदि ढोकर उनके घर तक पहुँचा आते थे।

## कन्याओंसे हास-परिहास

कभी छोटी-छोटी कन्याएँ गङ्गाजीकी या शिव-पार्वतीकी पूजाके लिए फल-मिठाई आदि लेकर आतीं, तो निमाइ अपने सखाओंके साथ उनके पास पहुँच जाते तथा कहते—"अरी! शिव मेरा दास है तथा पार्वती मेरी दासी है तथा यह गङ्गा भी मेरे चरणोंकी दासी

है। अतः तुम मेरी पूजा करो, मैं तुम्हें मनचाहा वर दूँगा।" ऐसा कहकर उन कन्याओंसे पूजाकी सारी सामग्री छीनकर फूलमाला अपने गलेमें पहन लेते तथा फल-मिठाई आदि अपने मित्रोंमें बाँटकर खा लेते। यदि कोई कन्या अपना सामान लेकर भागने लगती, तो ये जोर-जोरसे कहने लगते—"अच्छा, भाग भाग। पर ध्यान रखना तुझे बूढ़ा पति मिलेगा तथा तेरी सात-सात सौतें होंगी।" यह सुनकर वह बेचारी डरकर वापस आ जाती तथा फल-मिठाई आदि प्रभुका दे देती। प्रभु भी उसका नैवेद्य खाकर प्रसन्न होकर कहते—"अब तुम चिन्ता मत करना, तुम्हें सुन्दर पति मिलेगा।"

## ब्राह्मणों एवं कन्याओंपर अपरोक्ष कृपा

निमाइकी ऐसी हरकतोंसे परेशान होकर एक दिन उन ब्राह्मणों एवं कन्याओंने जगन्नाथ मिश्रके पास जाकर उनकी शिकायत कर दी। यह सुनकर जब जगन्नाथ मिश्र क्रोधित होकर हाथमें डण्डा लेकर प्रभुकी पिटाई करनेके लिए गङ्गाकी ओर चल पड़े, तो वे कन्याएँ दौड़कर प्रभुके पास जाकर कहने लगी—"निमाइ! तुम शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ। तुम्हारे पिताजी डण्डा लेकर तुम्हे मारनेके लिए आ रहे हैं।" वास्तवमें प्रभु जब उन कन्याओंसे हास-परिहास करते थे, तो बाहरसे तो वे क्रोध प्रकाश करती थीं, किन्तु भीतरसे वे बहुत आनन्दित होती थी। वे सब निमाइको अपने प्राणोंसे भी प्रिय मानती थीं। उन कन्याओंकी बात सुनकर प्रभुने अपने मित्रोंको समझाया कि यदि पिताजी आकर तुमसे मेरे बारेमें पूछें तो कह देना कि आज तो निमाइ आया ही नहीं। हम सब उसीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपने मित्रोंको ऐसा पाठ पढ़ाकर प्रभु दूसरे मार्गसे घर पहुँच गये। घर पहुँचकर द्वारसे ही माँसे कहने लगे—"माँ! मुझे फूलमाला तथा तेल दो। मैं गङ्गामें स्नानकर गङ्गाकी पूजा करूँगा।" उन्हें देखते ही शचीमाताने आनन्दसे उन्हें अपनी गोदीमें ले लिया तथा बार-बार उनका मुख चुम्बन करने लगी। फिर उन्हें तेल एवं माला देते हुए मन-ही-मन सोचने लगीं कि निमाइका शरीर तो धूलसे लतपथ है। इसके केश भी धूलसे धूसरित एवं बिखरे हुए

हैं तथा इसके हाथोंपर एवं मुखपर भी स्याहीके निशान हैं। ऐसा एक भी लक्षण नहीं दिखायी पड़ रहा है कि इसने स्नान किया है। तो क्या वे ब्राह्मण एवं कन्याएँ झूठ बोल रहे थे। नहीं, यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि एक-दो लोग झूठ बोल सकते हैं, सब लोग नहीं। इस प्रकार वे इस विषयमें सोच ही रही थी कि इतनेमें जगन्नाथ मिश्र गङ्गाके तटपर प्रभुको न पाकर क्रोधमें भरकर घर आ पहुँचे। परम चतुर प्रभुने जैसे ही उन्हें देखा, 'पिताजी, पिताजी' कहते हुए वे उनकी गोदीमें चढ़ गये। उनके मुखकमलका दर्शन एवं उनका स्पर्श पाते ही जगन्नाथ मिश्रका क्रोध कपूरकी भाँति उड़ गया। उनकी आँखोंसे आनन्दके अश्रु प्रवाहित होने लगे। उनका हृदय गद्‌गद् हो गया। वे प्रभुको अपनी छातीसे लगाकर उनके सिरको सहलाने लगे। तत्पश्चात् कुछ धैर्य धारणकर प्रेमपूर्वक कहने लगे—"बेटा निमाइ! तू गङ्गामें सबको तङ्ग क्यों करता है? और सुना है कि तू विष्णुकी पूजाकी वस्तुओंको भी नष्ट कर देता है तथा भगवान्‌के भोगके फल-मिठाई आदि खा लेता है।" यह सुनकर प्रभु कहने लगे—"पिताजी! आज तो मैं अभी तक गङ्गामें गया ही नहीं। वे सबलोग मुझपर मिथ्या आरोप लगा रहे हैं। मेरे दोष न करनेपर भी यदि वे लोग मुझपर दोष लगा रहे हैं, तब तो मैं सत्य ही उन्हें तङ्ग करूँगा।" ऐसा कहकर प्रभु हँसते हुए गङ्गाकी ओर चल पड़े। उनके गङ्गामें पहुँचते ही उनके सखाओंने उन्हें घेर लिया तथा उनकी जय-जयकार करने लगे।

प्रभुके चले जानेके पश्चात् जगन्नाथ मिश्र कहने लगे—"शची! ऐसा लगता है, स्वयं-भगवान् कृष्णने ही हमारे घरमें निमाइके रूपमें जन्म लिया है। इसका कारण है कि जैसा कृष्णके विषयमें शास्त्रोंमें वर्णन है, ठीक वैसे ही गुण हमारे निमाइमें हैं। यह सबको तङ्ग करता है, तथापि सभी लोग इससे बहुत प्रेम करते हैं। पता नहीं क्यों इसे देखते ही मेरा क्रोध भी चला जाता है। जब वह मेरी गोदीमें चढ़ जाता है, तो मैं सबकुछ भूल जाता हूँ। अतः निश्चित ही यह भगवान् है या फिर कोई सिद्ध महापुरुष है।" इस प्रकार कुछ क्षणके लिए जगन्नाथ मिश्रके हृदयमें प्रभुके प्रति ऐश्वर्य बुद्धि आ गयी, परन्तु इतनेमें ही प्रभुके घर आ जानेपर उनका दर्शन

करते ही जगन्नाथ मिश्रके हृदयमें वात्सल्यभाव उमड़ आया। पुत्रके दर्शनके आनन्दसे वे सबकुछ भूल गये।

## विश्वरूपका संन्यास

प्रभुके बड़े भाई विश्वरूपने अध्ययन पूरा कर लिया था। अब उनकी युवा अवस्था देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्रने उनके विवाहकी चेष्टा आरम्भ कर दी। परन्तु इससे विश्वरूप बहुत दुःखी हो गये। अन्ततः एक दिन रातके समय वे गृह त्यागकर चले गये तथा संन्यास ग्रहण कर लिया। विश्वरूपके संन्याससे मानो जगन्नाथ मिश्र तथा शचीमाताके सिरपर वज्र गिर पड़ा हो। विश्वरूपके गुणोंका स्मरणकर रोते-रोते दोनों बेहाल हो गये। प्रभु भी भाईके विरहसे अत्यन्त व्यथित हो गये। तब बन्धु-बान्धवोंके समझानेपर तथा अपने छोटे पुत्र निमाइका मुख दर्शनकर जगन्नाथ मिश्र और शचीमाता कुछ शान्त हुए। अब प्रभुने भी चञ्चलता बन्द कर दी। अब वे सर्वदा अपने पिता-माताके पास ही रहते थे तथा उन्हें यह कहते हुए सान्त्वना देते—"पिताजी! बड़े भैयाने संन्यास ले लिया है, तो क्या हुआ। आप लोग चिन्ता न करें, मैं तो हूँ ना आपके पास। मैं आप दोनोंकी अपने प्राणोंसे सेवा करूँगा।" प्रभुकी ऐसी प्यार-भरी बातें सुनकर एवं उनका मुख दर्शनकर धीरे-धीरे उन दोनोंका दुःख कुछ कम होने लगा।

अब प्रभुने खेलकूद बिल्कुल बन्द कर दिया और अब वे सब समय किताबोंमें ही खोये रहते थे। एकबार पढ़नेमात्रसे ही कठिनसे कठिन सूत्र भी प्रभुको स्मरण हो जाता। इतनी छोटी-सी आयुमें ऐसी तीव्र बुद्धि देखकर चारों ओर उनकी प्रशंसा होने लगी। लोग जगन्नाथ मिश्रसे आकर कहते—"जगन्नाथजी! आप धन्य हैं, जो आपको ऐसा होनहार एवं महाबुद्धिमान पुत्र प्राप्त हुआ है।" यह सुनकर शचीमाता तो फूली नहीं समाती थी, परन्तु जगन्नाथ मिश्रके मनमें एक अनहोनीकी आशङ्का जन्म लेने लगी। अन्ततः उन्होंने एक दिन शचीमातासे कहा—"शची! मेरा मन कह रहा है कि हमारा यह पुत्र भी घरमें नहीं रहेगा, क्योंकि विश्वरूप भी इसीकी भाँति प्रकाण्ड विद्वान हो गया था। वह शास्त्रोंका मर्म जान गया था कि

यह संसार असार है, जिसके फलस्वरूप उसकी संसारसे विरक्ति हो गयी थी और उसने संन्यास ग्रहण कर लिया। अब निमाइ भी उसीके पदचिह्नोंपर चल रहा है। यदि यह भी सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता हो गया, तो अवश्य ही यह भी संसारको केवल एक जञ्जाल जानकर संन्यास ले लेगा। और यदि यह भी हमें छोड़कर चला गया, तो हम दोनोंका मरण निश्चित है। अतः मेरा विचार है कि इसकी पढ़ाई बन्द कर दी जाय। यदि यह मूर्ख ही रहेगा तो कभी भी हमें छोड़कर नहीं जायेगा।" सुनकर शचीमाता कहने लगी—"यदि यह मूर्ख ही रहेगा, तो अपना भरण-पोषण कैसे करेगा? तथा मूर्खको अपनी कन्या भी कौन देगा?"

उनकी बात सुनकर जगन्नाथ मिश्र कहने लगे—"वास्तवमें तुम अबोध ब्राह्मण-कन्या हो, इसीलिए ऐसा कह रही हो। तुमसे किसने कह दिया कि पाण्डित्य ही किसीका भरण-पोषण करता है, एकमात्र कृष्ण ही सबका भरण-पोषण एवं रक्षा करनेवाले हैं। मूर्ख हो या पण्डित जिसके भाग्यमें जहाँ कन्या लिखी होगी, उसे अवश्य ही मिलेगी। अतः तुम चिन्ता न करो। जब कृष्ण सबका भरण-पोषण करते हैं, तब निश्चय ही वे इसका भी भरण-पोषण करेंगे।"

इस प्रकार बहुत सोच-विचारकर जगन्नाथ मिश्रने अपनी शपथ देकर प्रभुका अध्ययन बन्द करा दिया। धर्मके साक्षात् मूर्त्तिस्वरूप प्रभुने भी अपने पिताजीके आदेशका उल्लंघन न कर चुपचाप उनकी बातको स्वीकार कर लिया तथा विद्यालय जाना बन्द कर दिया।

## पुनः चञ्चलता प्रकाश

अध्ययन बन्द हो जानेसे प्रभु अत्यन्त दुःखी हो गये, परन्तु कुछ बोले नहीं। अब फिरसे उन्होंने पहलेकी ही भाँति नटखटता आरम्भ कर दी। कभी अपने साथ बहुत-से बालकोंको लेकर किसीके घरमें घुस जाते तथा वहाँ रखा हुआ दूध, दही आदि खाकर घरका सारा सामान तोड़फोड़ देते। कभी रातके समय सभी बालक कम्बल ओड़कर पशुओंकी भाँति चलते हुए किसीके केलेके बागमें घुस जाते तथा सारे बागको नष्ट कर देते थे। लोग पशु जानकर 'हाय हाय' करते हुए डण्डे लेकर आते, तो सभी बालक भाग जाते। कभी

किसीके घरका द्वार बाहरसे बन्द कर देते। जिससे घरके लोग शौच (मल-मूत्र) आदि नहीं जा पानेके कारण चिल्लाते—"अरे, द्वार किसने बन्द कर दिया?" और सभी बालक वहाँसे भाग जाते। तब दूसरे लोग आकर द्वार खोलते थे। जब लोग उनकी शिकायत करनेके लिए जाते, तो जगन्नाथ मिश्र उनके आगे हाथ जोड़कर क्षमा माँगते, परन्तु प्रभुको कुछ भी नहीं कहते थे।

## माताको शिक्षा

एक दिन जगन्नाथ मिश्र किसी कारणवश कहीं बाहर गये हुए थे। शचीमाता भगवान्‌के लिए भोग बनानेके बाद मिट्टीकी जिन हाँडियोंको घरके बाहर कूढ़ेके ढेरपर फैंक देती थीं, प्रभु उनपर आसन लगाकर बैठ गये। हाँडियोंकी सारी कालिख उनके शरीरपर लग गयी, जिससे उनकी शोभा ऐसी हो गयी, मानो सोनेकी मूर्त्तिके ऊपर किसीने गन्ध-द्रव्यका लेप किया हो। जब माताको पता चला तो वे दौड़कर आयीं और कहने लगीं—"बेटा निमाइ! तू इन अपवित्र हाँडियोंपर क्यों बैठ गया? क्या तुझे मालूम नहीं है कि इन अपवित्र हाँडियोंको स्पर्श करनेपर स्नान करना पड़ता है।" प्रभु हँसते हुए कहने लगे—"माँ! तुम लोग मुझे विद्या अध्ययन नहीं करने दे रहे हो। तो फिर तुम ही बताओ कि एक मूर्ख ब्राह्मण बालकको अच्छे-बुरेका ज्ञान कैसे होगा? और माँ आपने जो कहा कि तू अपवित्र स्थानपर बैठ गया है, तो आप बालकके समान बात कर रही हैं। मेरी स्थिति कभी भी अपवित्र स्थानपर नहीं होती। जहाँपर मैं अवस्थित होता हूँ, यदि वह स्थान अशुद्ध भी हो, तो भी मेरे स्पर्शमात्रसे वह सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थान हो जाता है। गङ्गा आदि समस्त तीर्थ वहींपर आकर विराजमान हो जाते हैं। और माता ये हाँडियाँ अपवित्र कैसे हो गयीं? आपने इनमें भगवान्‌के लिए भोग तैयार किया। जो वस्तु भगवान्‌की सेवामें लग जाती है, वह कभी भी अपवित्र नहीं हो सकती। बल्कि इन हाँडियोंके स्पर्शसे यह स्थान भी परम शुद्ध हो गया है। इसलिए मैं अपवित्र स्थानपर नहीं बैठा हूँ। सभी वस्तुओंकी शुद्धता तो मेरे स्पर्शके कारण ही है।" इस प्रकार बाल्यभावमें आविष्ट होकर प्रभु

श्रीगौरसुन्दर अपना तत्त्व कहने लगे, परन्तु उनकी मायाके प्रभावसे उसे कोई समझ नहीं पाया।

तत्पश्चात् शचीमाता स्वयं जाकर उनका हाथ पकड़कर लाने लगीं, तो प्रभु कहने लगे—"यदि तुम लोग मुझे पढ़ने नहीं दोगे, तो मैं यहींपर बैठा रहूँगा।" यह सुनकर वहाँपर उपस्थित सभी लोग कहने लगे—"लोग अपने बच्चोंको पढ़ाना चाहते हैं, परन्तु वे पढ़ना नहीं चाहते। और सौभाग्यसे तुम्हारा पुत्र स्वयं पढ़ना चाहता है, परन्तु तुमने इसकी पढ़ाई बन्द कर दी। तुम्हारे किस शत्रुने तुम्हें ऐसी बुद्धि प्रदान की है। अतः आज यह निमाइ जो कर रहा है, इसमें इसका कोई दोष नहीं है।"

ऐसा कहकर सभी लोग निमाइसे बोले—"बेटा निमाइ! अब वहाँसे उठ जा। अब भी यदि तुम्हारे माता-पिता तुझे नहीं पढ़ायेंगे, तो तू खूब नटखटता करना।" तब शचीमाता प्रभुको लेकर आयी

और प्रभु भी मुसकराते हुए माँके साथ आ गये। माताने उन्हें स्नान कराया। उसी समय जगन्नाथ मिश्र भी आ गये। शचीमाताने उन्हें सारी बात बतालायी कि निमाइ पढ़ाई बन्द हो जानेसे बहुत दुःखी है। तब अन्यान्य लोगोंने भी समझाया—"मिश्र! तुम तो स्वयं एक विद्वान हो। तो फिर किसके कहनेपर तुम निमाइको पढ़ने नहीं दे रहे हो? भगवान्‌की जैसी इच्छा है, वह तो होकर ही रहेगी। उसे कोई भी टाल नहीं सकता। इसलिए भय छोड़कर पुत्रको पढ़ाओ।"

## उपनयन संस्कार तथा पुनः विद्या-अध्ययन आरम्भ

बन्धु-बान्धवोंकी बात सुनकर तथा पुत्रकी तीव्र इच्छा जानकर जगन्नाथ मिश्रने विचार किया कि जो हमारे भाग्यमें लिखा है, वह तो घटित होगा ही, अतः निमाइकी पढ़ाई आरम्भ कर देनी चाहिये। ऐसा विचारकर उन्होंने पहले निमाइका उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार करानेकी इच्छा की। इस अनुष्ठानपर उन्होंने अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंको आमन्त्रित किया। शुभ मासमें, शुभ दिनमें, शुभ क्षणमें श्रीगौरहरिने यज्ञसूत्र धारण किया। उस समय उनके शरीरपर यज्ञसूत्र (जनेऊ) ऐसे सुशोभित हो रहा था, मानो स्वयं शेषनाग ही सूक्ष्मरूप धारणकर उनके श्रीअङ्गसे लिपट गये हों। उस समय प्रभुकी शोभा भगवान् वामनदेवकी भाँति हो गयी। उनके शरीरसे दिव्य तेज निकल रहा था। उनके उस स्वरूपको देखकर किसीकी भी उनके प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं रही। प्रभु श्रीगौरसुन्दर हाथमें दण्ड तथा कन्धेपर झोली धारणकर सबके घर-घर जाकर भिक्षा माँगने लगे। स्त्रियाँ निमाइको भिक्षुकके वेशमें देखकर आनन्दित होकर स्नेहपूर्वक उन्हें बहुत-सी भिक्षा प्रदान करने लगी। ऐसे महान् सौभाग्यसे भला देव-देवियाँ क्यों वञ्चित रहते। ब्रह्माणी, पार्वती आदि देवताओंकी पत्नियाँ तथा अनसूया आदि ऋषियोंकी पत्नियाँ भी साधारण ब्राह्मणियोंका वेश धारणकर अति प्रसन्न होकर प्रभुकी झोलीमें भिक्षा प्रदान करने लगीं। इस प्रकार उपनयन संस्कारके पश्चात् जगन्नाथ मिश्र प्रभुको सान्दीपनि मुनिके अवतार गङ्गादास पण्डितके पास ले गये तथा उनसे अपने पुत्रको शिक्षा प्रदान करनेकी प्रार्थना की। गङ्गदास पण्डितने मिश्रकी प्रार्थनाको आनन्दपूर्वक स्वीकार कर लिया।

अब प्रभुका अध्ययन प्रारम्भ हो गया। गङ्गादास पण्डित एकबार जो कुछ भी पढ़ा देते, वह सब प्रभुको स्मरण हो जाता। यहाँ तक कि गङ्गादास जो व्याख्या करते प्रभु उसका खण्डन कर देते तथा फिर उसीको स्थापित भी कर देते। यह देखकर गङ्गादास अत्यन्त विस्मित हो जाया करते थे। प्रभुकी तीव्र बुद्धि एवं प्रतिभा देखकर उन्होंने प्रभुको सर्वश्रेष्ठ छात्रकी उपाधि प्रदान कर दी। प्रभु अपनेसे ऊँची कक्षाओंमें पढ़नेवाले छात्रोंको भी बातों ही बातोंमें पराजित कर दिया करते थे।

## जगन्नाथ मिश्रका स्वप्न तथा परलोक-गमन

एक दिन जगन्नाथ मिश्रने एक स्वप्न देखा। स्वप्न देखकर वे शोकसागरमें डूब गये। शय्यासे उठते ही भगवान्‌को प्रणाम करते हुए कहने लगे—"हे कृष्ण! हे गोविन्द! प्रभो! मैं आपसे केवल एक ही वर चाहता हूँ कि मेरा निमाइ गृहस्थ होकर मेरे घरमें ही रहे।" यह सुनकर शचीमाताने चिन्तित होकर पूछा—"क्या बात है, आज आप शय्यासे उठते ही अचानक ऐसा वर क्यों माँग रहे हैं?" मिश्र कहने लगे—"आज मैंने एक स्वप्न देखा। निमाइका सिर मुण्डा हुआ था तथा वह एक अद्भुत संन्यासीके वेशमें था। कभी वह 'कृष्ण कृष्ण' कहकर रो रहा था, तो कभी हँस रहा था। चारों ओरसे लाखों लोग आनन्दपूर्वक उसकी स्तुति कर रहे थे। फिर कुछ क्षण बाद ही मैंने देखा कि हमारा निमाइ लाखों लोगोंके साथ नगर-नगरमें कीर्त्तन करते हुए नाच रहा था। फिर मैंने देखा कि निमाइ समस्त भक्तोंको साथ लेकर नीलाचल चला गया। यह स्वप्न देखकर मुझे चिन्ता हो रही है कि हम दोनोंके जीवनका एकमात्र सहारा हमारा निमाइ कहीं संसारसे विरक्त होकर संन्यासी न हो जाय।" यह सुनकर शचीमाता भी भयभीत हो गयी, परन्तु उन्होंने अपने भावको छिपा लिया तथा बोलीं—"स्वप्न भी कहीं सच होते हैं? आप चिन्ता न कीजिये, हमारा निमाइ इतना निर्दय नहीं है कि हम दोनोंको असहाय छोड़कर चला जायेगा।" ये सब बातें माता कह तो रही थीं, परन्तु न जाने क्यों उनका मन भी यही कह रहा था कि निमाइ सर्वदाके लिए घरमें रहनेवाला नहीं है।

अब रात-दिन जगन्नाथ मिश्रको यही चिन्ता सताये जा रही थी। इसी चिन्ताके कारण अन्ततः एक दिन वे परलोक सिधार गये अर्थात् नित्यधाममें चले गये। पिताके देहत्याग करनेपर प्रभु श्रीगौरसुन्दर उसी प्रकार विलाप करने लगे, जैसे महराज दशरथके देहत्याग करनेपर रामचन्द्रने विलाप किया था। शचीमाताका भी रो-रोकर बुरा हाल था। प्रभु उन्हें सान्त्वना देते हुए कहने लगे—"माँ! तुम लेशमात्र भी चिन्ता मत करो। जब मैं तुम्हारे पास हूँ, तो तुम्हारे पास सबकुछ है। हे माता! ब्रह्मा, शिव आदिके लिए भी जो दुर्लभ वस्तु है, मैं तुम्हें वह लाकर प्रदान करूँगा।" अपने निमाइका मुख देखकर शची माता अपना सब दुःख भूल गयीं। जिन प्रभुका स्मरण करनेमात्रसे ही समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, ऐसे प्रभु जिनके पुत्र हैं, उनके हृदयमें दुःख कैसे रह सकता हैं।

## ज्योतिषीपर कृपा

अपना अध्ययन पूरा कर लेनेके पश्चात् प्रभुने अब बच्चोंको व्याकरण पढ़ाना आरम्भ कर दिया। भ्रमण करते हुए एक दिन वे एक ज्योतिषीके घर पहुँच गये। प्रभुके दिव्य स्वरूपका दर्शनकर उसने सम्भ्रमपूर्वक प्रभुको प्रणाम किया।

प्रभु बोले—"मैंने सुना है कि आप अच्छे ज्योतिषी हैं। अतः मेरा हाथ देखकर बतलाइये कि मैं पिछले जन्ममें कौन था?" प्रभुकी बात सुनकर ज्योतिषी गोपालमन्त्र जपते-जपते मन-ही-मन चिन्ता करने लगा। कुछ क्षण पश्चात् उसने देखा कि कारागारमें रात्रिके समय माता-पिताके (देवकी-वसुदेवके) सामने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिए भगवान् खड़े हैं तथा वे दोनों उनकी स्तव-स्तुति कर रहे हैं। अगले ही क्षण देखा कि पिता वसुदेव पुत्रको गोकुल पहुँचाने जा रहे हैं। फिर उसने प्रभुके द्विभुजधारी शिशु स्वरूपका दर्शन किया। उस समय उनके श्रीअङ्गपर एक भी वस्त्र नहीं था। उनकी कमरमें किङ्किणी बँधी हुई थी। उनके एक हाथमें मक्खन था तथा दूसरे हाथसे वे उसे खा रहे थे। वह ब्राह्मण बाल-गोपालका उपासक था तथा गोपालमन्त्रका जप करता था। इसलिए प्रभुमें अपने इष्टदेव गोपालका दर्शनकर आश्चर्यचकित हो गया। उसी समय दृश्य बदल

गया। अब उसने देखा कि भगवान् त्रिभङ्गरूपमें खड़े होकर मुरली बजा रहे हैं तथा गोपियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर नाना प्रकारके वाद्य यन्त्रोंके साथ गान कर रही हैं। यह अद्भुत दृश्य देखकर उस ज्योतिषीने विस्मित होकर अपनी आँखें खोलकर देखा तो पाया कि सामने कोई नहीं एकमात्र प्रभु बैठे हैं। इसलिए वह मन-ही-मन अपने इष्टदेव गोपालदेवसे प्रार्थना करने लगा—"हे प्रभो! यह ब्राह्मण कौन हैं? कृपाकर आप मुझे सब बताइये।" जैसे ही उसने आँखें बन्दकर यह प्रार्थना की, उसी क्षण उसने हाथमें धनुष-बाण लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन किया। इस प्रकार उसे प्रभुमें कभी प्रलयकालीन जलमें अपने दाँतपर पृथ्वीको धारण किये हुए भगवान् वराहदेवके दर्शन, कभी उग्ररूपधारी भक्तवत्सल भगवान् श्रीनृसिंहके दर्शन, कभी बलि महाराजके दरबारमें एक छोटे-से ब्रह्मचारीके रूपमें भगवान् वामनदेवके दर्शन, कभी प्रलयकालीन जलमें मत्स्य अवतारके दर्शन, कभी हल-मूसलधारी बलदेव प्रभुके दर्शन होने लगे। परन्तु भगवान्‌की मायासे मोहित होनेके कारण वह ब्राह्मण प्रभुको पहचान नहीं पाया। वह मन-ही-मन विचार करने लगा कि यह ब्राह्मण अवश्य ही कोई मन्त्रविद है अथवा कोई देवता है और मेरी परीक्षा लेनेके लिए ब्राह्मणके रूपमें आया है। इसका कारण है कि इसके शरीरसे जैसा तेज निकल रहा है, वैसा तेज किसी साधारण व्यक्तिके शरीरसे निकलना असम्भव है।

उसे इस प्रकार विचारमग्न देखकर श्रीगौरसुन्दरने उससे पूछा—"हे ज्योतिषी! मैं पूर्व जन्ममें कौन था? तुमने अपने विद्याके द्वारा जो देखा उसे स्पष्ट रूपसे कहो।" ज्योतिषी बोला—"हे ब्राह्मण अभी आप जाइये। आज सन्ध्याके समय मैं अच्छी प्रकारसे मन्त्र जपकर देखूँगा, तब बताऊँगा।" "बहुत अच्छा" कहकर श्रीगौरसुन्दर हँसते हुए वहाँसे चल पड़े।

## भक्त श्रीधरसे प्रेम-कलह

नवद्वीपमें एक परम भगवद्भक्त रहते थे। उनका नाम श्रीधर था। वे बहुत ही निर्धन थे। बाजारमें उनकी एक छोटी-सी सब्जीकी दुकान थी। श्रीगौरसुन्दर श्रीधरसे बहुत प्रीति करते थे। इसलिए

किसी-न-किसी बहाने बार-बार उनकी दुकानपर चले जाते तथा उनसे नाना प्रकारसे हास-परिहास करते। एक दिन जब प्रभु उसकी दुकानपर उपस्थित हुए, तो उन्हें आया हुआ देखकर श्रीधरने प्रभुको श्रद्धापूर्वक प्रणामकर बैठनेके लिए उन्हें एक आसन प्रदान किया। श्रीधर बहुत ही सरल एवं शान्त स्वभावके थे। किसी प्रकारसे उस

छोटी-सी दुकानसे जीवन निर्वाह करते हुए सब समय भगवद्भजनमें प्रमत्त रहते थे। परन्तु भगवान्‌को तो अपने ऐसे निष्किञ्चन भक्तोंके साथ हास-परिहास करनेमें ही आनन्द आता है। इसलिए प्रभु उनसे बोले—"अरे श्रीधर! मैं देखता हूँ कि तुम सब समय हरिनाम करते रहते हो, परन्तु तुम्हारे दुःख तो दूर ही नहीं होते। यह तो बहुत आश्चर्यकी बात है। लक्ष्मीकान्तकी सेवा करनेपर भी तुम्हारे पास पहननेके लिए वस्त्र पर्याप्त एवं खानेको पर्याप्त अन्न भी नहीं है। मैं जानना चाहता हूँ कि इसका क्या कारण है?"

श्रीधर—"हे पण्डित! यह ठीक है कि मेरे पास पर्याप्त अन्न, वस्त्र इत्यादि नहीं हैं, परन्तु मैं भूखा भी तो नहीं रहता हूँ। खानेके लिए कुछ-न-कुछ व्यवस्था तो हो ही जाती है तथा शरीरको ढकनेके लिए छोटे-मोटे कपड़ेके टुकड़े भी मिल ही जाते हैं।"

प्रभु—"श्रीधर यह बात ठीक है कि ये वस्तुएँ तुम्हें मिल जाती हैं। परन्तु देखो तो, तुम्हारे कपड़ोंमें दस जगह टाँके लगे हुए हैं तथा अपने घरकी हालत तो देखो! घासकी छत है और वह भी टूटी हुई है। वर्षाका सारा पानी घरके अन्दर आता है। इसके विपरीत जो लोग हरिनाम नहीं करते, चण्डी एवं विषहरि आदि देवी-देवताओंकी पूजा करते हैं, उनके पास न खानेका अभाव है न पहननेके वस्त्रोंका अभाव। वे तो विशाल एवं सुन्दर भवनोंमें आनन्दसे रहते हैं।"

श्रीधर—"हे ब्राह्मण देवता! आप ठीक ही कह रहे हैं, परन्तु सबका समय तो एक समान ही व्यतीत होता है। राजाके घरमें अपार धन-सम्पत्ति होती है तथा वह उत्तम भोजन एवं उत्तम वस्त्र धारणपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है। इसके विपरीत पक्षी वृक्षोंपर रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु काल तो दोनोंका एक समान ही होगा अर्थात् काल उपस्थित होनेपर दोनोंको ही इस शरीरको छोड़ना पड़ेगा। इसलिए सभी जीव भगवान्‌की इच्छासे ही अपने-अपने कर्मानुसार विषयोंको भोगते हैं।"

प्रभु—"श्रीधर! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास अपार सम्पत्ति है, जिसे तुम छिपकर भोग करते हो।" मैं कुछ दिनों बाद ही जगत्‌में सभी लोगोंको तुम्हारी सम्पत्ति दिखाऊँगा तथा सबको बताऊँगा कि

जगत्में श्रीधरसे अधिक धनी अन्य कोई नहीं हो सकता। तब देखूँगा कि तुम मुझे कैसे ठगते हो?"

श्रीधर (हाथ जोड़कर)—"हे पण्डित! आप कृपापूर्वक चुपचाप अपने घरको जाइये। आप एक ब्राह्मण हैं तथा मेरी दुकानपर आये हैं। इसलिए आपसे झगड़ा करना मेरे लिए सर्वथा अनुचित है।"

प्रभु—"श्रीधर! इतना सहज नहीं है कि मैं तुम्हें बिना कुछ लिए ही छोड़ दूँगा। पहले यह बताओ कि तुम मुझे क्या दोगे? तब मैं तुम्हें छोड़ूँगा।"

श्रीधर—"पण्डित! मैं कोई बहुत बड़ा व्यवसायी नहीं हूँ कि आपको कुछ दान कर पाऊँ। मैं कुछ थोड़ (केलेके पेड़के अन्दरका भाग) और मोचा (केलेका फूल) इत्यादि बेचता हूँ। इससे जो थोड़ी-बहुत आय होती है, उसीसे गङ्गाजीकी सेवा और अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।"

प्रभु—"श्रीधर! मुझे ठगनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं जानता हूँ कि तुम कैसे निर्धन हो? तुमने जो अमूल्य सम्पत्ति (भक्ति) छिपाकर रखी है, उसे तो मैं कुछ दिन बाद लूँगा, अभी तो तुम मुझे मोचा और थोड़ इत्यादि दे दो। यदि नहीं दोगे तो मैं यहीं बैठकर तुमसे झगड़ा करता रहूँगा, जिससे तुम्हारी दुकानपर कोई ग्राहक नहीं आयेगा और तुम्हारी बिक्री नहीं होगी।"

यह सुनकर श्रीधर मन-ही-मन विचार करने लगा कि ये ब्राह्मण बहुत चञ्चल हैं। यदि मैंने इन्हें बिना मूल्यके कुछ नहीं दिया तो ये मुझे तङ्ग करते रहेंगे। ये ब्राह्मण हैं, इसलिए मैं इनके साथ झगड़ा भी नहीं कर सकता और यदि बिना मूल्यके ही देता हूँ तो मेरा निर्वाह कैसे होगा? क्योंकि यह एक दिनकी बात नहीं, रोजकी बात है। किन्तु, इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि ये जो प्रतिदिन ही छल-बलसे मेरे पाससे बिना मूल्य दिये सब्जियाँ ले जाते हैं, यह भी मेरा सौभाग्य ही है कि मेरी वस्तु ब्राह्मणकी सेवामें लग रही है। शास्त्रोंमें ब्राह्मणको दान करनेकी बात कही गयी है। ऐसा विचारकर श्रीधर बोला—"हे पण्डित! आपको मूल्य देनेकी आवश्यकता नहीं है। आपकी जो इच्छा हो ले लें। परन्तु कृपाकर मेरे साथ झगड़ा करके मेरी दुकानदारी खराब न करें।"

प्रभु—"अच्छी बात है। मैं अब तुमसे झगड़ा नहीं करूँगा। परन्तु फल, सब्जी अच्छी होनी चाहिये।"

यह कहकर वे थोड़, केले इत्यादि लेकर श्रीधरसे बोले—"श्रीधर! तुम मुझे क्या मानते हो? मुझे बताओ, तो मैं चुपचाप अपने घर चला जाऊँगा।"

श्रीधर—"आप ब्राह्मण हैं।"

प्रभु—"तुम मुझे पहचान नहीं पाये, मैं ब्राह्मण नहीं, बल्कि एक गोप हूँ। तुम मुझे एक ब्राह्मण बालक समझते हो, परन्तु मैं अपनेको एक गोपबालक मानता हूँ।"

यह सुनकर श्रीधर हँसने लगा। वह भगवान्‌की मायाके कारण अपने प्रभुको पहचान नहीं पाया। उसे हँसते हुए देखकर प्रभु बोले—"श्रीधर! तुम जिस गङ्गाजीकी पूजा करते हो, वह मेरे चरणोंकी दासी है। मेरे कारण ही उसकी महिमा है।"

श्रीधर—"हे पण्डित! आप कैसी अपराधजनक बातें कह रहे हैं? क्या आपको गङ्गाजीका तनिक भी भय नहीं है? मैंने सुना था कि आयु बढ़नेके साथ-साथ बच्चेकी चञ्चलता दूर होती है, परन्तु आपकी चञ्चलता तो दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।"

इस प्रकार नित्यप्रति अपने भक्त श्रीधरसे छल-बलसे प्रभु जो सब्जी ले जाते, उसे ही खाते थे। भगवान्‌का स्वभाव है—

*भक्तेर द्रव्य प्रभु काड़ि-काड़ि खाय।*
*अभक्तेर द्रव्य प्रभु उलटिया ना चाय॥*

अर्थात् भक्तकी वस्तुको प्रभु बलपूर्वक छीनकर खाते हैं, परन्तु अभक्तके द्वारा छप्पन भोग दिये जानेपर भी वे उस ओर ताकते तक नहीं।

## दिग्विजयी पण्डितका उद्धार

एक दिन केशव काश्मीरी नामक कोई दिग्विजयी पण्डित देशके विभिन्न स्थानोंके पण्डितोंको पराजित करता हुआ अभिमानके शिखरपर बैठकर नवद्वीपमें उपस्थित हुआ। वह जानता था कि इस समय विद्याका प्रधान केन्द्र नवद्वीप है, अतः उसने सोचा कि जब तक मैं

नवद्वीपके पण्डितोंको पराजित न कर दूँ, तब तक मेरी विजययात्रा पूर्ण नहीं हो सकती। ऐसा विचारकर वह नवद्वीपमें उपस्थित हुआ।

नवद्वीपके घर-घरमें एवं पण्डितोंकी सभाओंमें यह समाचार जङ्गलकी आगकी तरह फैल गया कि देशके समस्त पण्डितोंको पराजित करता हुआ सरस्वतीदेवीका पुत्र एक दिग्विजयी पण्डित नवद्वीपमें आया है। इस कारणसे पण्डित समाज चिन्तामें डूब गया। पण्डित लोग विचार करने लगे कि जिसकी जिह्वापर स्वयं सरस्वतीदेवी

विराजमान हो, उसे कोई मनुष्य पराजित नहीं कर सकता। इस समय नवद्वीपके पण्डित समस्त भारतवर्षमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। परन्तु आज यदि हमलोग इस पण्डितसे पराजित हो गये तो यह हमारे लिए अत्यन्त लज्जाका विषय होगा। इस प्रकार हजारों अध्यापक अपना-अपना कार्य छोड़कर इसी विषयपर चिन्ता करने लगे।

यह समाचार प्रभुके छात्रोंने भी प्रभुको सुनाया कि एक दिग्विजयी पण्डित श्रीसरस्वतीदेवीको वशमें करके समस्त पण्डितोंको पराजितकर

उनसे जयपत्र लिखवाते हुए नवद्वीपमें उपस्थित होकर अपना प्रतिद्वन्द्वी चाहता है। उसका कहना है कि यदि नवद्वीपके पण्डितोंका सामर्थ्य है, तो वे उसके साथ शास्त्रार्थ करें, अन्यथा जयपत्र लिखकर दे दें कि हम लोग हार गये। यह सुनकर श्रीगौरसुन्दर अपने छात्रोंसे बोले—"तुमलोग सावधानीपूर्वक सुनो। भगवान् किसीका भी अहङ्कार सहन नहीं करते। जिस-जिस गुणके कारण कोई अहङ्कार करता है, भगवान् उसके उस गुणको नष्ट कर देते हैं। विद्याका फल अहङ्कार नहीं बल्कि नम्रता है। जिस प्रकार वृक्षमें फल लगनेपर वृक्षकी टहनियाँ स्वयं झुक जाती हैं, उसी प्रकार गुणोंके आनेपर व्यक्ति दीन-हीन बन जाता है। यही पण्डितका लक्षण है। परन्तु यदि व्यक्ति ऐसा न होकर अहङ्कारमें डूब जाय तो अवश्य ही भगवान् उसके अहङ्कारको नष्ट कर देते हैं। जैसे—रावण, नहुष, वेण, बाणासुर, नरकासुर ये सभी अत्यन्त ही शक्तिशाली थे, परन्तु जैसे ही इन्हें घमण्ड हुआ, भगवान्ने इन सबके घमण्डको चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। इसी प्रकार भगवान् इस दिग्विजयी पण्डितके घमण्डको भी अवश्य ही यहींपर तुम्हारे सामने ही नष्ट करेंगे।" ऐसा कहकर प्रभु हँसते-हँसते शिष्योंके साथ गङ्गाके तटपर उपस्थित होकर गङ्गाजीको प्रणामकर एवं आचमनकर बैठ गये। उन्होंने शास्त्रचर्चा आरम्भ कर दी। अभी तक उन्होंने किसीको नहीं बताया कि वे किस प्रकार दिग्विजयी पण्डितके अभिमानको चूर्ण करेंगे। परन्तु प्रभु मन-ही-मन विचार करने लगे कि इस पण्डितको बहुत अभिमान हो गया है कि उसके समान पण्डित जगत्में नहीं है। अतः यदि मैं इसे सभाके मध्यमें ही पराजित करूँ, तो यह उसके लिए मृत्युतुल्य होगा। सभी लोग उसका अपमान करेंगे, जिससे जीते जी ही उसका मरण होगा। अतः मैं इस प्रकारसे इसके गर्वको चूर्ण करूँगा कि साँप भी मर जाये तथा लाठी भी न टूटे अर्थात् इसका घमण्ड भी चूर्ण हो जायेगा और इसे दुःख भी नहीं होगा। प्रभु ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उसी समय दिग्विजयी पण्डित स्वयं ही वहाँपर उपस्थित हो गया। प्रभुके अपूर्व सौन्दर्य एवं उनके अलौकिक तेजको देखकर वह बहुत आकर्षित हुआ। उसने कुछ छात्रोंसे पूछा—"इनका क्या नाम है?"

शिष्योंने उत्तर दिया कि इनका नाम निमाइ पण्डित है।

यह सुनकर वह गङ्गाजीको प्रणामकर प्रभुकी सभाके बीच उपस्थित हुआ। उन्हें देखकर प्रभु मन्द-मन्द मुसकराते हुए एक आसन प्रदानकर बोले—"महाशयजी! कृपाकर विराजिये।"

वह गर्वपूर्वक आसनपर बैठ गया। बैठते ही उसने कुछ उपेक्षापूर्वक प्रभुसे पूछा—"क्या तुम्हारा ही नाम निमाइ पण्डित है? तथा तुम व्याकरण शास्त्र पढ़ाते हो?"

प्रभु—"मैं भला व्याकरण क्या पढ़ाऊँगा, थोड़ी-सी चेष्टा करता हूँ। परन्तु जो मैं पढ़ाता हूँ, उसे न तो शिष्यलोग समझ पाते हैं, न मैं ही उन्हें समझा पाता हूँ। कहाँ आप समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण और कहाँ मैं एक नया-नया व्याकरणका छात्र। मैंने सुना है कि आपके पाण्डित्यके आगे बड़े-बड़े पण्डित नतमस्तक हो जाते हैं। यह सुनकर मेरी इच्छा भी हो रही है कि आपके मुखसे कुछ सुनूँ। अतः यदि आप कृपापूर्वक गङ्गाजीकी महिमा सुना दें, तो मैं स्वयंको धन्य मानूँगा।"

यह सुनकर उस पण्डितने गर्वसे वहींपर एक सौ श्लोकोंकी रचना कर उनके माध्यमसे गङ्गाजीकी महिमाका गान किया, जिसे सुनकर प्रभु उसके पाण्डित्यकी प्रशंसा करते हुए बोले—"आपके समान पण्डित इस जगत्में दूसरा नहीं है। आपकी कविताका अर्थ आप ही समझ सकते हैं अथवा स्वयं सरस्वतीदेवी समझ सकती हैं। अतः यदि आप अपने द्वारा कहे गये श्लोकोंमेंसे मात्र एक श्लोककी व्याख्या सुना दें, तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा।"

दिग्विजयीने पूछा—"तुम बताओ कौन-से श्लोककी व्याख्या सुनाऊँ?"

प्रभुने उसके द्वारा कहे हुए सौ श्लोकोंमेंसे बीचका एक श्लोक सुनाकर उसकी व्याख्या करनेको कहा।

वह श्लोक सुनकर पण्डितके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह बोला—"मैंने आँधी-तुफानकी भाँति एक-सौ श्लोक कहे। उनमेंसे तुम्हें यह एक श्लोक कैसे याद हो गया?"

प्रभु—"हे पण्डितप्रवर! इसमें आश्चर्य क्या है? यदि आप सरस्वतीदेवीके वरसे दिग्विजयी हो सकते हैं, तो कोई उन्हींकी कृपासे श्रुतिधर भी तो हो ही सकता है।"

इस उत्तरसे सन्तुष्ट होकर केशव काश्मीरीने श्लोकका अर्थ सुना दिया। अर्थ सुनकर प्रभु बोले—"कृपापूर्वक इस श्लोकके गुण एवं दोषोंको भी बता दीजिये।"

पण्डित—"इस श्लोकमें दोष तो हो ही नहीं सकता। इसमें गुण ही गुण हैं।"

प्रभु—"यद्यपि यह श्लोक सराहनीय है, परन्तु यदि आप रुष्ट न हों, तो मैं बता सकता हूँ कि अच्छी प्रकारसे विचार करनेपर स्पष्ट होता है कि इसमें कुछ गुण एवं दोष दोनों ही हैं।"

पण्डित—"यह सम्भव नहीं है कि मेरे श्लोकमें कोई दोष हो। मैंने जो कहा वह वेदोंका भी सार है। तुम तो एक साधारणसे व्याकरणके अध्यापक हो। तुमने अलङ्कार-शास्त्र तो पढ़ा ही नहीं। फिर तुम क्या जानते हो अलङ्कार इत्यादिके विषयमें?"

प्रभु—"आप रुष्ट मत होइये। मैं एक साधारण-सा व्याकरणका अध्यापक हूँ। इसीलिए तो आपसे कह रहा हूँ कि आप ठीक प्रकारसे मुझे समझा दीजिये। यद्यपि मैंने अलङ्कार-शास्त्र नहीं पढ़ा, परन्तु सुना अवश्य है। इसीलिए आपके श्लोकमें गुण एवं दोष दोनों ही देख रहा हूँ।"

पण्डित—"ठीक है! तुम ही बताओ कि मेरे श्लोकमें क्या-क्या दोष एवं गुण हैं।"

यह सुनकर प्रभुने उस श्लोकमें पाँच दोष एवं पाँच गुण दिखा दिये, जिसे सुनकर दिग्विजयी पण्डित अवाक् रह गया। उसकी प्रतिभा धरी-की-धरी रह गयी। वह कुछ बोलना चाहता था, परन्तु उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा था। वह दुःखी होकर मन-ही-मन विचार करने लगा कि एक साधारण-से छात्रने मुझे बुरी तरहसे पराजित कर दिया। ऐसा लगता है कि आज सरस्वतीदेवी मुझपर असन्तुष्ट हैं। उन्हींके प्रभावसे आज मेरी यह दुर्दशा हुई है। इसका कारण है कि जिस प्रकार इस निमाइ पण्डितने मेरे श्लोकमें गुण एवं दोष दिखाये है, उससे लगता है कि आज इसकी जिह्वापर सरस्वतीदेवी स्वयं विराजमान होकर बोल रही हैं। इस प्रकार बहुत विचार करनेके बाद पण्डित श्रीगौरसुन्दरसे बोला—"हे निमाइ पण्डित! तुमने जिस प्रकारसे मेरे श्लोकमें दोष एवं गुणोंको दिखाया है,

उससे मैं बहुत आश्चर्यचकित हूँ। अतः तुम मुझे बताओ कि जब तुमने अलङ्कार-शास्त्र पढ़ा ही नहीं, तब किस प्रकार तुमने श्लोकमें विद्यमान गुण एवं दोषोंको जान लिया।"

प्रभु उसके मनकी बातोंको जानकर हँसते हुए बोले—"मैं शास्त्रोंका अच्छा-बुरा विचार नहीं जानता। मेरे मुखसे सरस्वती जैसा बुलवाती है, मेरी जिह्वा वैसा ही बोलती है।"

यह सुनकर दिग्विजयी पण्डितने निश्चय कर लिया कि आज अवश्य ही देवीने इस साधारण बालकके माध्यमसे मुझे पराजित करवा दिया। वह घर जाकर देवीकी पूजाकर एवं मन्त्र जपकर सो गया। रात्रिमें देवीने उस भाग्यवान पण्डितको दर्शन दिया और बोलीं—"पण्डित! आज तुम्हारी जिससे पराजय हुई है, वे साधारण मनुष्य नहीं, अपितु अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नाथ हैं। मैं उनके श्रीचरणकमलोंकी दासी हूँ तथा उनके सम्मुख खड़े होनेमें भी मुझे लज्जा आती है।"

*विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।*
*विमोहिताः विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥*

(श्रीमद्भागवतम् ५/५/१३)

अर्थात् महामाया जीवोंको मोहित करती है। उसका यह कार्य भगवान्‌को अरुचिकर होनेके कारण वह स्वयंको दोषी मानकर लज्जाके कारण भगवान्‌के सामने नहीं आ पाती। जिनकी मायासे विमोहित होनेके कारण अविद्याग्रस्त जीव 'मैं' और 'मेरा' का अभिमान करते हैं, उन भगवान् वासुदेवको नमस्कार है।

"अतः हे विप्र! जब भी तुम शास्त्रार्थ करते हो, उस समय मैं तुम्हारी जिह्वापर विराजमान होकर बोलती हूँ। परन्तु अपने प्रभुके सामने मेरा वश नहीं चलता। मेरी तो बात ही क्या है, स्वयं-भगवान् अनन्तदेव अपने अनन्त मुखोंसे प्रभुका गुणगान करते हैं। वेद जिनका (अनन्तदेवका) गुणगान करते हैं और ब्रह्मा, शिव आदि जिनकी उपासना करते हैं, ऐसे अनन्त देव भी उनके सामने मोहित हो जाते हैं। जिनकी इच्छासे ही सृष्टि और प्रलय होती है, वे प्रभु ही इस कलियुगमें ब्राह्मणके रूपमें लीलाएँ कर रहे हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह

आदि असंख्य अवतार हैं, उन सबके मूल ये ही हैं। द्वापरयुगमें जिन्हें नन्दनन्दन नामसे जाना जाता है, वे ही अभी शचीनन्दनके रूपमें प्रकटित हैं। अतः हे विप्र! तुमने जो मेरी सेवा-पूजा की है मान, पूजा, प्रतिष्ठा आदि को प्राप्त करना उसका मुख्य फल नहीं है। उसका मुख्य फल तो यही है कि तुम्हें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नाथका दर्शन हो गया। अतः तुम शीघ्र जाकर उनके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण करो। तुम इसे मात्र स्वप्न मत समझना। मैं तुमपर सन्तुष्ट हूँ, इसीलिए मैंने ये गोपनीय बातें तुमसे कहीं हैं। परन्तु सावधान! ये बातें किसीके सामने प्रकट मत करना। अन्यथा तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।" ऐसा कहकर देवी अन्तर्द्धान हो गयीं। प्रातःकाल उठते ही वह भाग्यशाली पण्डित प्रभुके निकट गया और प्रभुका दर्शन करते ही उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु भी उसे प्रेमसे उठाकर आलिङ्गन करते हुए बोले—"हे पण्डितप्रवर! यह आप क्या कर रहे हैं?"

विप्र—"मैं आपकी कृपादृष्टि चाहता हूँ।"

प्रभु—"आप एक दिग्विजयी पण्डित होकर भी ऐसी बातें कर मुझे लज्जित क्यों कर रहे हैं?"

विप्र—"हे प्रभो! आपकी कृपासे ही समस्त प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। इस कलियुगमें ब्राह्मण रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। परन्तु आपकी कृपाके बिना आपको कौन पहचान सकता है? कल आपके सामने जब मेरी जिह्वा स्तब्ध हो गयी थी, तभी मुझे सन्देह हो गया था कि आप साधारण मनुष्य नहीं हैं। तीन बार मैं आपसे पराजित हुआ, परन्तु फिर भी आपने अपनी मीठी-मीठी बातोंसे मेरा सम्मान ही किया, जो एक साधारण व्यक्तिके लिए असम्भव है। अतः मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आप साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। मेरे कोटि-कोटि जन्मोंके पुण्योंका ही फल है कि मैं नवद्वीपमें आया तथा मैंने आपका दर्शन प्राप्त किया। मैं अज्ञानसे अन्धा होकर अभिमानमें चूर होकर सर्वत्र सबको पराजित कर उनसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमें ही लगा हुआ था तथा इसीको अपने जीवनका उद्देश्य मान बैठा था। परन्तु आज आपकी कृपासे मेरी आँखें खुल गयीं। लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति ये सभी वस्तुएँ इसी जगत्में

रह जाती हैं। इनसे आत्माका लेशमात्र भी कल्याण सम्भव नहीं है। अतः हे प्रभो! आप मुझे उपदेश प्रदान करें जिससे कि मेरे हृदयकी समस्त प्रकारकी दुर्वासनाएँ नष्ट हो जाएँ तथा निष्कपट हृदयसे मैं आपकी सेवा कर सकूँ।"

पण्डितकी दीनता देखकर प्रभु प्रसन्न होकर हँसते-हँसते बोले—"विप्र! आप धन्य हैं कि सरस्वती आपकी जिह्वापर विराजमान रहती हैं। परन्तु दिग्विजय करना विद्याका कार्य नहीं है, बल्कि ईश्वरका भजन करना ही विद्याका कार्य है। आप जरा विचार तो कीजिये कि पूर्व-पूर्व महाजनोंने मान-सम्मान, धन-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार सब कुछ परित्यागकर एकान्त भावसे भगवान्‌का भजन किया है। इसलिए आप भी इस अनित्य संसारको त्यागकर जब तक शरीरमें प्राण हैं, भगवान्‌की सेवा करें।" ऐसा कहकर प्रभुने आनन्दपूर्वक उसे गलेसे लगा लिया। अब वह दाम्भिक दिग्विजयी पण्डित नहीं, अपितु तृणसे सुनीच एक दीन-हीन वैष्णव हो गया।

## महाप्रभुकी गया यात्रा

अब निमाइको विवाहयोग्य देखकर श्रीशचीमाताने विष्णुप्रिया नामकी कन्यासे उनका विवाह कर दिया। श्रीगौरसुन्दरके विवाहसे शचीमाता निश्चिन्त हो गयीं। अपने पुत्र एवं पुत्रवधुकी अपूर्व जोड़ी देखकर वे फूली नहीं समा रही थीं। विष्णुप्रियाने भी अपनी सेवा एवं मधुर स्वभावसे परिवारके सभी सदस्योंको अपने वशमें कर लिया। उनकी सेवा, सरलता एवं उज्ज्वल चरित्रसे श्रीगौरसुन्दर भी अति प्रसन्न थे।

उस समय संसारमें भक्ति प्रायः लुप्त हो गयी थी। सर्वत्र ही ज्ञान, कर्म, योग अथवा नास्तिकताका साम्राज्य फैला हुआ था। संसारकी नास्तिकता देखकर प्रभुकी इच्छा हुई कि मैं जिस कार्यके लिए आया हूँ, मुझे वह आरम्भ कर देना चाहिये। ऐसा विचारकर वे पिताके श्राद्धके छलसे अपने कुछ छात्रोंके साथ गयाके लिए चल पड़े।

मार्गमें एक स्थानपर प्रभुने ज्वर (बुखार) से पीड़ित होनेकी लीला प्रकट की। प्रभुको ज्वरसे (बुखार) पीड़ित देखकर उनके साथ आये हुए सभी छात्र बहुत चिन्तित हो गये। सभीने मिलकर ज्वरको दूर

करनेका बहुत प्रयास किया, परन्तु ज्वर कम होना तो दूर, इसके विपरीत और भी अधिक बढ़ने लगा। वह तो कोई साधारण ज्वर नहीं था बल्कि वह तो प्रभुकी इच्छा थी। अतः जगत्में ऐसा कौन है, जो प्रभुकी इच्छाके विरुद्ध चल सके। इसलिए जब वे सभी प्रयास करते-करते थक गये, तो प्रभु स्वयं ही बोले—"मेरा ज्वर किसी भी औषधिसे ठीक नहीं हो सकता। इसे दूर करनेका एक ही उपाय है—यदि मुझे किसी शुद्ध ब्राह्मणका चरणामृत मिल जाए तो उसे पानकर मैं अवश्य ही स्वस्थ हो जाऊँगा।"

यह सुनकर छात्र पास ही के गाँवमें गये तथा किसी आचरणशील एवं शुद्ध ब्राह्मणका चरणामृत लाकर प्रभुको प्रदान किया। प्रभुने प्रसन्न होकर उसे पान किया। पान करते ही ज्वर दूर हो गया। इस प्रकार प्रभुने शुद्ध ब्राह्मणोंकी महिमा जगत्में प्रकाशित की।

## ईश्वरपुरीसे दीक्षा ग्रहण

गया पहुँचकर प्रभुने विष्णुके श्रीचरणकमलोंमें अपने पितरोंका तर्पण किया। ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान्के चरणचिह्नोंकी महिमा श्रवणकर वे प्रेममें आविष्ट हो गये। उनके नयनोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा सारा शरीर पुलकित हो गया। इस प्रकार जगत्-वासियोंका सौभाग्य उदित हुआ, क्योंकि अब प्रभुने अपनी प्रेमाभक्तिको प्रकाश करना आरम्भ कर दिया। उनके नेत्रोंसे गङ्गा एवं यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। इस अद्भुत दृश्यका दर्शनकर वहाँ उपस्थित सभी ब्राह्मण अचम्भित रह गये। उसी समय वहाँपर परम भागवत श्रीईश्वरपुरीपाद उपस्थित हुए। श्रीगौरसुन्दरने उन्हें अपने सम्मुख देखकर आदरपूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया। ईश्वरपुरीने भी गौरसुन्दरको देखकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें आलिङ्गन किया। दोनोंके ही नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, जो एक दूसरेके श्रीअङ्गोंको भिगो रही थी। कुछ समय पश्चात् प्रभु बोले—"आज आपके श्रीचरणोंके दर्शनसे मेरी गयायात्रा वास्तवमें ही सफल हुई है। तीर्थोंमें पिण्डदान करनेसे केवल उसीका उद्धार होता है, जिसके नामसे पिण्डदान किया जाता है, परन्तु आप जैसे परम

भागवतके दर्शनसे तो कोटि-कोटि पितृोंका उद्धार हो जाता है। अतः तीर्थोंके साथ आपकी तुलना सम्भव ही नहीं है। आप तो तीर्थोंको भी पवित्र करनेमें समर्थ हैं।"

*गङ्गार परश हइले पश्चाते पावन।*
*दर्शने पवित्र कर एइ तोमार गुण॥*

अर्थात् गङ्गामें आचमन अथवा स्नान करनेपर व्यक्ति पवित्र होता है। परन्तु वैष्णवोंका ऐसा अमित प्रभाव है कि उनके दर्शनमात्रसे ही पापीसे पापी व्यक्ति भी परम पवित्र हो जाता है।

"अतः हे वैष्णव ठाकुर! आप इस संसारसे मेरा भी उद्धार कीजिये। मैंने अपना तन, मन और वचन आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया है। आप मुझे कृष्ण-प्रेमरस पान करायें।"

ईश्वरपुरी—"हे निमाइ पण्डित! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप कोई साधारण जीव नहीं, अपितु भगवान्‌के अवतार हैं। इसका कारण है कि जैसा आपका पाण्डित्य है, वैसा साधारण मनुष्योंमें नहीं हो सकता। आपका दर्शनकर जैसा आनन्द होता है, साधारण मनुष्यके दर्शनसे वैसा असम्भव है। जबसे मैंने नवद्वीपमें आपका दर्शन किया है, तबसे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता; सब समय आपका ही स्मरण होता रहता है। मैं सत्य कह रहा हूँ कि मुझे आपका दर्शन करके श्रीकृष्णदर्शनका ही सुख प्राप्त होता है।"

उनकी बातें सुनकर प्रभु मुसकराते हुए बोले—"आप तो महाभागवत हैं। महाभागवतोंको सर्वत्र भगवत्-स्फूर्ति ही होती है। अतः यदि आप मुझे योग्य समझें तो मुझे दीक्षामन्त्र प्रदान कीजिये।"

ईश्वरपुरी—"हे पण्डित महाशय! मन्त्रकी तो बात ही क्या, यदि आप मुझसे मेरे प्राण भी माँगें, तो मैं उन्हें भी प्रसन्नतापूर्वक आपको दे सकता हूँ, क्योंकि मैं तो आपका आज्ञाकारी दासमात्र हूँ।"

इस प्रकार जगत्‌को शिक्षा देनेके उद्देश्यसे स्वयं साक्षात् भगवान् होकर भी श्रीमन्महाप्रभुने ईश्वरपुरीसे मन्त्र ग्रहण किया। मन्त्र ग्रहणकर प्रभुने पुरीपादकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर बोले—"हे गुरुदेव! आज मैंने अपना सर्वस्व आपको अर्पित कर दिया है। अतः आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं कृष्णप्रेमके सागरमें डूब सकूँ।"

## श्रीवासको चतुर्भुजरूपका दर्शन कराना

गयासे लौटनेके पश्चात् प्रभुका भाव ही बदल गया। अब वे पण्डित निमाइ नहीं, बल्कि भक्त निमाइ हो गये थे। अब उन्होंने व्याकरण पढ़ाना बन्द कर दिया था। वे सब समय 'कृष्ण कृष्ण' कहते रहते थे। एक दिन प्रभु भ्रमण करते-करते गङ्गाके सुरम्य तटपर जा पहुँचे और चारों ओर देखने लगे। उस समय उन्हें गङ्गाके तटपर गायोंका एक झुण्ड दिखायी दिया। उनमेंसे कुछ तो घास चर रही थीं, कुछ पूँछ उठाकर इधर-उधर दौड़ रही थीं, कुछ सो रही थीं और कुछ गङ्गामें जलपान कर रही थीं। इस दृश्यको देखकर प्रभु गर्जन करने लगे तथा बार-बार "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" कहने लगे। फिर उसी आवेशमें दौड़ते-दौड़ते श्रीवास पण्डितके घर पहुँच

गये। वहाँ जाकर गरजते हुए बोले—"श्रीवास क्या कर रहा है?" ऐसा कहकर जिस घरके अन्दर श्रीवासजी नृसिंह भगवान्‌की पूजा कर रहे थे, उसके दरवाजेपर जोर-जोरसे ठोकर मारने लगे तथा दहाड़ते हुए कहने लगे—"तू किसकी पूजा करता है और किसका ध्यान करता है? तू जिसका ध्यान और पूजा कर रहा है, देख आज वह स्वयं ही तेरे द्वारपर आये है।" यह सुनकर जैसे ही श्रीवास पण्डितका ध्यान भङ्ग हुआ, उन्होंने सामने ही शङ्ख, चक्र, गदा एवं कमलका फूल धारण किये हुए चतुर्भुजरूपमें प्रभु श्रीगौरसुन्दरको वीरासनमें बैठे हुए देखा। उस स्वरूपका दर्शनकर श्रीवास अपने कर्त्तव्यके विषयमें विमूढ़ होकर चुपचाप बैठे ही रह गये। उन्हें इसका भी ज्ञान न रहा कि इस समय क्या करना चाहिये। उन्हें इस प्रकार मोहित हुआ देखकर प्रभु बोले—"श्रीवास! इतने दिनों तक मैं तेरे आस-पास घूमता रहा। परन्तु आज तक तू मुझे पहचान नहीं पाया। तू नहीं जानता कि तेरे उच्च-सङ्कीर्त्तन एवं नाड़ा (अद्वैताचार्य) के हुङ्कारसे ही मैं अपने समस्त परिकरोंके साथ वैकुण्ठ छोड़कर इस धराधाममें अवतरित हुआ हूँ। अतः अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है, क्योंकि अब मैं दुष्टोंका संहारकर साधुओंका उद्धार करूँगा। अतः अब तू निश्चिन्त होकर मेरी स्तुति कर।"

यह सुनकर तथा प्रभुको अपने समक्ष साक्षात् रूपमें प्रकट हुआ देखकर श्रीवास प्रेममें आविष्ट एवं पुलकित होकर दोनों हाथ जोड़कर प्रभुकी स्तुति करने लगे।

## श्रीअद्वैताचार्यको दिव्य दर्शन

एक दिन प्रभु अद्वैताचार्यको पुकारने लगे। जब भक्तलोग आचार्यके पास गये तथा आचार्यको बताया तो वे अपनी पत्नीके साथ प्रभुके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने प्रभुके दिव्य स्वरूपका दर्शन किया—तपे हुए स्वर्ण जैसा प्रभुका सुन्दर वर्ण तथा उनका अद्भुत लावण्य करोड़ों कामदेवोंको भी पराभूत कर रहा था। उनकी दोनों भुजाएँ सोनेके दो स्तम्भोंके समान प्रतीत हो रही थीं, जिनपर रत्नजड़ित अलङ्कार झिलमिला रहे थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स एवं कौस्तुभमणि सुशोभित

हो रही थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झलमल-झलमल कर रहे थे। गलेमें वैजयन्तीमाला धीरे-धीरे झूल रही थी। उनके श्रीचरणोंमें लक्ष्मीदेवी विराजमान थीं तथा अनन्तदेव उनके ऊपर छत्र धारण किये हुए थे। उनके श्रीचरणोंके नखकमल मणियोंकी भाँति चमक रहे थे। श्रीचरणोंके निकट ही चतुर्मुख ब्रह्मा, पञ्चमुखी शिव तथा षड्मुखी कार्त्तिकेय इत्यादि प्रणत होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। निकटमें ही नारद, शुक आदि हाथ जोड़कर आनन्दपूर्वक प्रभुका गुणगान कर रहे थे। उनके चरणोंके समीप ही मगरमच्छपर सवार परम सुन्दरी श्रीगङ्गाजी हाथ जोड़े खड़ी थीं। उनकी दृष्टि प्रभुके श्रीचरणोंमें पड़े हुए हजारों देवताओंपर पड़ी, जो रोते-रोते प्रभुकी स्तुति कर रहे थे। एक ओर हजारों फणाधारी नाग अपने फणोंको उठाकर प्रभुकी स्तुति कर रहे थे। उनके निकट ही उनकी पत्नियाँ भी सजल नयनोंसे क्रन्दन करते-करते गद्गद् कण्ठसे प्रभुकी वन्दना कर रही थीं। आकाश ऐरावत, गज, हंस, अश्व आदि हजारों प्रकारके विमानोंसे भरा हुआ था, जिनपर विद्यमान इन्द्रादि देवतागण एवं उनकी स्त्रियाँ आनन्दसे प्रभुका गुणगान करते हुए उनके ऊपर पुष्पवर्षा कर रही थीं। इन समस्त दृश्योंको देखकर दोनों पति-पत्नी हतप्रभ हो गये। उनके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकल रहा था।

उन्हें इस प्रकार मोहित हुआ देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर श्रीअद्वैताचार्यको लक्ष्यकर बोले—"आचार्य! तुम्हारी प्रतिज्ञाके कारण मुझे यहाँ आना पड़ा। मैं तो क्षीरसागरमें शयन कर रहा था। परन्तु तुमने जैसी मेरी आराधना की एवं जैसा सङ्कल्प किया, उससे मेरी निद्रा भङ्ग हो गयी और मुझे यहाँ आना पड़ा। इसके अतिरिक्त मेरे चारों ओर जो इन भक्तोंको देख रहे हो, ये सभी मेरे गण हैं, ये तुम्हारे लिए ही जगत्में अवतीर्ण हुए हैं। जिन वैष्णवोंका (मेरे परिकरोंका) दर्शन करनेके लिए ब्रह्मा आदि भी लालायित रहते हैं, आज तुम्हारी कृपासे साधारण मनुष्य भी उनका दर्शन पाकर धन्यातिधन्य हो जायेंगे।"

प्रभुके श्रीमुखसे इन सब बातोंको सुनकर आचार्य प्रेमसे विह्वल होकर अवरुद्ध कण्ठसे कहने लगे—"हे प्रभो! चारों वेद आपके

विषयमें वर्णन तो करते हैं, परन्तु स्वयं उन्होंने भी अभी तक आपका दर्शन नहीं किया। परन्तु आज मेरे सब जन्म-कर्म सफल हो गये, जो कि वेदोंके लिए भी दुर्लभ आपके ऐसे दिव्यस्वरूपके दर्शनका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।"

## श्रीवास पण्डितपर कृपा

एक दिन भगवद्-आवेशकी अवस्थामें प्रभु सन्तुष्ट होकर श्रीवासजीसे बोले—"श्रीवास! क्या तुम्हें वह दिन स्मरण है, जब तुम देवानन्द पण्डितके पास भागवत सुनने गये थे तथा भागवत सुनते-सुनते प्रेममें आविष्ट होकर जोर-जोरसे रोते-रोते सभाके बीचमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे। तब देवानन्दके भक्तिशून्य अबोध शिष्योंने तुम्हारे भावोंको न जानकर तथा पागल समझकर तुम्हें द्वारसे बाहर कर दिया था। उस समय स्वयं देवानन्द पण्डित भी यह सब देखता रहा, परन्तु उसने अपने शिष्योंको ऐसा करनेसे रोका नहीं, क्योंकि यद्यपि वह भागवत पाठ करता था, परन्तु उसके हृदयमें लेशमात्र भी भक्ति नहीं थी। वह तो पाठ करता था, केवल मान-सम्मान अथवा धन-सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिए। इसलिए वह भी तुम्हारे हृदयके भावोंको समझ नहीं पाया, क्योंकि वैष्णव ही वैष्णवके हृदयके भावोंको समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं। इस प्रकार कुछ क्षण पश्चात् जब तुम्हें होश आया, तो तुम बहुत दुःखी होकर एकान्त स्थानपर जाकर रोने लगे। परन्तु फिरसे तुम्हारी इच्छा भागवत सुननेकी हुई। उस समय मैं तुम्हारा दुःख सह न पाया तथा वैकुण्ठसे तुम्हारे हृदयमें आविर्भूत हो गया। इस प्रकार तुम्हारे हृदयमें बैठकर मैंने तुम्हें अपनी लीलाओंकी अनुभूति करायी थी।" यह सुनकर तथा प्रभुकी कृपाको स्मरणकर श्रीवास पण्डित आनन्दसे नाचने लगे।

## गङ्गादासपर कृपा

[गङ्गादास त्रेतायुगमें वशिष्ठ ऋषि थे। उस समय स्वयं श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मणजीने उन्हें गुरुरूपमें वरण किया था। द्वापरयुगमें ये सान्दीपनी मुनी थे। कृष्ण-बलरामने उज्जैन जाकर इनसे शिक्षा ग्रहणकी लीला

की थी। इस कलियुगमें वे ही नवद्वीपमें गङ्गादासके रूपमें प्रकट हुए। इनका घर प्रभुके घरसे थोड़ी दूरी गङ्गानगरमें था। इन्होंने अपने घरमें विद्यालय खोल रखा था। जब श्रीगौरसुन्दर कुछ बड़े हुए तो, जगन्नाथ मिश्रने विद्याध्ययनके लिए प्रभुको इनके चरणोंमें समर्पित किया, श्रीगौरसुन्दरने इनसे व्याकरण आदिकी शिक्षा ग्रहण की।]

इसके बाद प्रभु श्रीगौरसुन्दर गङ्गादाससे बोले—"गङ्गादास! क्या तुम्हें उस रात्रिका स्मरण है जब तुम मुसलमान राजाके भयसे अपने सारे परिवारके साथ गाँव छोड़कर भाग रहे थे, परन्तु गङ्गाके तटपर पहुँचते-पहुँचते रात हो जानेके कारण वहाँपर तुम्हें एक भी नाव नहीं मिली। तब तुमने अपने मनमें विचार किया कि अभी कुछ ही देरमें राजाके सिपाही आकर हमें पकड़ लेंगे तथा मेरी आँखोंके सामने ही मेरे परिवारकी स्त्रियोंके साथ दुर्व्यवहार करेंगे। अतः इससे पहले ही मैं गङ्गामें कूदकर आत्महत्या कर लूँगा। ऐसा सोचकर जैसे ही तुमने गङ्गामें कूदना चाहा, उसी समय मैं स्वयं एक नाविकके रूपमें एक नौकाको चलाते हुए तुम्हारे सामने पहुँचा। अपने सामने ही एक नौका देखकर तुम्हारी प्रसन्नताकी सीमा न रही तथा तुम बहुत करुण स्वरमें मुझसे कहने लगे—'हे भाई! आज मेरी जाति, प्राण, धन, सबकुछ तुम्हारे हाथोंमें है। अतः कृपाकर तुम मुझे सपरिवार गङ्गापार करा दो। मैं तुम्हारा उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगा और तुम्हें मुँहमाँगा पुरस्कार दूँगा।' तुम्हारी ऐसी करुण प्रार्थना सुनकर मैं तुम्हें तथा तुम्हारे सारे परिवारको गङ्गापार कराकर अपने धाम वैकुण्ठ ले आया।" यह सुनकर गङ्गादासको उस घटनाका स्मरण हो आया तथा वह प्रभुकी कृपाको अनुभवकर आनन्दसे मूर्च्छित हो गये।

## श्रीधरपर कृपा

तब प्रभुने अपने भक्तोंको शीघ्र ही भक्त श्रीधरको बुलाकर लानेका आदेश दिया। वे सदा-सर्वदा रोते-रोते प्रभुका भजन करते रहते थे और उनका दर्शन करनेके लिए उत्कण्ठित रहते थे। अतः प्रभुकी इच्छा हुई की वे आज यहाँ आकर उनका दर्शन करके अपनी अभिलाषा पूर्ण करें। यह सुनकर भक्तवृन्द श्रीधरको बुलानेके लिए

चल पड़े। अभी वे आधे रास्तेमें ही पहुँचे थे कि उन्हें श्रीधरकी आवाज सुनायी दी। वे जोर-जोरसे नाम-सङ्कीर्त्तन कर रहे थे। यह सुनकर वैष्णवलोग जहाँसे ध्वनि आ रही थीं, उस दिशामें चल पड़े। कुछ ही दूरीपर देखा कि वे निर्जनमें बैठकर जोर-जोरसे रोते-रोते हरिनाम कीर्त्तन कर रहे हैं। यह देखकर भक्तवृन्द उनके पास गये और उनसे बोले—"श्रीधरजी! चलिये, आपको प्रभुने बुलवाया है।" प्रभुका नाम सुनते ही श्रीधर आनन्दसे मूर्च्छित हो गये। भक्तोंने शीघ्र ही उन्हें उठा लिया और प्रभुके पास लाकर उनके श्रीचरणोंमें रख दिया। अपने चरणोंके निकट श्रीधरको देखकर प्रभु प्रसन्न हो गये तथा प्रेमसे कहने लगे—"श्रीधर! तुमने बहुत जन्मों तक मेरी आराधना की है। कितनी ही बार मेरा प्रेम प्राप्त करनेके लिए भजन करते-करते देहको त्याग दिया। इस जन्ममें भी तुमने मेरी बहुत सेवा की। मैं सब समय तुम्हारे दिये हुए केले, थोड़, मोचा (केलेका फूल) आदि ही खाता हूँ। क्या तुम भूल गये कि जब मैं व्याकरणका छात्र था, उस समय मैं तुम्हारी दुकानमें आया करता था। तुमसे झगड़कर भी तुमसे केले, थोड़ आदि ले लिया करता था तथा उनका मूल्य भी नहीं चुकाता था। परन्तु तुम मुझे पहचान नहीं पाते थे। तुम्हें स्मरण होगा कि मैंने तुमसे कहा था कि मैं एक दिन जगत्को दिखाऊँगा कि तुम कितने धनी हो। अतः अब तुम मेरे स्वरूपका दर्शन कर लो। मैं तुम्हें अष्ट-सिद्धियाँ प्रदान करूँगा।" यह सुनकर जैसे ही श्रीधरने सिर उठाकर प्रभुकी ओर देखा तो उन्होंने प्रभुके दिव्य-स्वरूपके दर्शन किये। उस समय उन्होंने श्रीगौरसुन्दरको श्यामवर्णमें देखा, उनके हाथोंमें वंशी थी, उनके दाहिनी ओर बलदेव प्रभु विद्यमान थे। लक्ष्मीजी प्रभुके हाथमें ताम्बुल (पान) अर्पण कर रही थीं तथा चतुर्मुख ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवता हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे थे। यह देखते ही श्रीधर आनन्दसे मूर्च्छित हो गये। प्रभु बोले—"उठो श्रीधर, उठो।" प्रभुके मधुर वचन सुनते ही जब श्रीधरकी मूर्च्छा दूर हो गयी, तो प्रभु बोले—"श्रीधर! तुम मेरी स्तुति करो।"

श्रीधर—"प्रभो! मैं तो एक मूर्ख व्यक्ति हूँ। आपकी स्तुति करनेका सामर्थ्य मुझमें कहाँ है?"

प्रभु—"श्रीधर! तुम्हारे जैसे भक्तका बोलना ही स्तुति है।" उसी समय प्रभुकी आज्ञासे सरस्वतीदेवी श्रीधरकी जिह्वापर विराजमान हो गयीं। अब तो श्रीधर अत्यन्त सुन्दर रूपसे प्रभुकी स्तुति करने लगे—"हे प्रभो! आप तो वेदोंके लिए भी गोपनीय हैं अर्थात् वेद भी आपको जाननेमें पूर्ण रूपसे समर्थ नहीं हैं। आप प्रति युगमें धर्मकी रक्षा करनेके लिए भिन्न-भिन्न रूपोंमें आते हैं। आप ही राम हैं, आप ही नृसिंह, आप ही कूर्म आदि हैं। हे प्रभो! मुझे स्मरण है कि एकबार आपने मुझसे कहा था कि तुम्हारी आराध्या गङ्गा मेरे चरणोंसे निकली है। उस समय मेरा चित्त पापोंसे कलुषित होनेके कारण मुझे आपके वचनोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। परन्तु आपकी ही कृपासे आज मैं समझ गया हूँ कि जिन्होंने अपनी मनोहारी लीलाओंके द्वारा गोकुल नगरीको धन्य किया था, वे नन्दनन्दन आप ही हैं तथा इस समय इस नवद्वीपको धन्य करनेके लिए गौरसुन्दरके रूपमें अवतरित हुए हैं। आप भक्तिके अधीन हैं। भीष्म पितामहने अपनी भक्तिके बलसे ही रणभूमिमें आपको पराजित कर दिया था। भक्तिके बलसे ही माता यशोदाने आपको बाँध दिया था। भक्तिके वशीभूत होकर ही इच्छामात्रसे अनन्त ब्रह्माण्डोंका लय-प्रलय करनेमें समर्थ होनेपर भी आपने श्रीदाम नामक अपने गोप-सखाको कन्धेपर बैठाकर ढोया।"

इस प्रकार श्रीधर निरन्तर प्रभुकी स्तुति करते जा रहे थे। यह देखकर वहाँपर उपस्थित सभी वैष्णवोंको बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे सभी सोचते थे कि श्रीधर सब्जी बेचनेवाला एक अनपढ़ है। श्रीधर प्रभुकी ऐसी स्तुति करेगा किसीने ऐसी कल्पना भी नहीं की थी। परन्तु आज उसके ऊपर प्रभुकी ऐसी कृपा देखकर सभीको आश्चर्य हुआ। प्रभु मुसकराते हुए कहने लगे—"श्रीधर! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो। आज मैं तुम्हें सभीके सामने अष्ट-सिद्धियाँ प्रदान करूँगा।"

श्रीधर—"प्रभो! आप मुझे फिरसे ठगनेकी चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु अब मुझे ठगना आपके लिए सम्भव नहीं है।"

प्रभु (मुसकराते हुए)—"परन्तु श्रीधर मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। इसलिए तुम्हारे मनमें जो हो, माँग लो।"

इस प्रकार जब प्रभु बार-बार वर माँगनेको कहने लगे तो श्रीधर बोले—"प्रभु! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो यही वर दीजिये कि जो ब्राह्मण मुझसे केले, थोड़ आदि छीन लिया करता था, वहीं ब्राह्मण जन्म-जन्मान्तरोंमें मेरा प्राणनाथ हो जाय।" ऐसा कहते-कहते श्रीधर भावविह्वल होकर प्रभुके चरणोंसे लिपटकर जोर-जोरसे रोने लगे। प्रभुने उन्हें उठाकर अपने गलेसे लगा लिया। श्रीधरकी भक्ति तथा उसपर प्रभुकी ऐसी अपूर्व कृपा देखकर सभी वैष्णवलोग क्रन्दन करने लगे। तब प्रभु बोले—"श्रीधर! मैं तुम्हें चक्रवर्ती सम्राट बना देता हूँ।"

श्रीधर—"प्रभो! मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। मैं यही चाहता हूँ कि मैं सब समय आपके नामोंका कीर्त्तन करता रहूँ।"

प्रभु—"श्रीधर! तुम तो मेरे नित्य दास हो। इसका लक्षण यही है कि मेरे भक्तको भक्तिके अतिरिक्त कोई भी वस्तु अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। इसलिए मैं वेदोंके लिए भी दुर्लभ भक्तियोग तुम्हें दे रहा हूँ।" यह सुनकर सभी वैष्णवलोग प्रभु एवं श्रीधर दोनोंकी जय-जयकार करने लगे।

## मुरारिगुप्तपर कृपा

श्रीधरपर कृपा करनेके बाद प्रभु मुरारिगुप्त जो हनुमानके अवतार हैं, उनसे कहने लगे—"मुरारि! तुम भी मेरे स्वरूपका दर्शन करो।"

प्रभुके ऐसा कहते ही श्रीगौरसुन्दर मुरारिको श्रीरामचन्द्रके रूपमें दीखने लगे। उस समय उनका वर्ण दुर्वादलकी भाँति श्याम वर्णका था। वे वीर आसनमें बैठे हुए थे। उनके हाथोंमें धनुष सुशोभित हो रहा था। उनके बायीं ओर सीताजी एवं दायीं ओर लक्ष्मणजी विराजमान थे। चारों ओरसे बानर एवं भालू इत्यादि उनकी स्तुति कर रहे थे। यह देखते ही मुरारि हनुमानके भावमें आविष्ट होकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह देखकर प्रभु विश्वम्भर कहने लगे—"अरे बानरश्रेष्ठ! क्या तुम सब भूल गये हो। श्रीसीतादेवीका हरण करनेवाले रावणने तुम्हारी पूँछमें आग लगायी थी तथा तुमने उसकी सारी सोनेकी लङ्काको जलाकर भस्म कर दिया था? मुरारि! उठो, उठो। मैं तुम्हारा प्रभु हूँ। तुम तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे

हो। मैं वही राघवेन्द्र श्रीराम तथा तुम हनुमान हो। इन सुमित्रानन्दन लक्ष्मणको देखो, जिसे जीवित करनेके लिए तुम गन्धमादन पर्वतको ले आये थे। ये श्रीजानकीजी हैं, इन्हें प्रणाम करो, जिन्हें अशोक वाटिकामें दुःखी देखकर तुम बहुत रोये थे।"

प्रभुके वचनोंको सुनकर मुरारिगुप्तकी मूर्च्छा दूर हो गयी तथा वे उस दृश्यका दर्शनकर इस प्रकार प्रेमसे अधीर होकर रोने लगे कि उनका करुण क्रन्दन सुनकर मानो सूखी हुई लकड़ी भी द्रवित हो जाये। उन्हें रोता हुआ देखकर प्रभुका हृदय भी द्रवित हो गया। वे बड़े प्रेमसे कहने लगे—"मुरारि! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कुछ भी वर माँगो।"

मुरारि—"प्रभो! मुझे और कुछ नहीं चाहिये। बस आप मुझे यही वरदान दीजिये कि मैं सदा-सर्वदा आपका गुणगान करता रहूँ। जहाँ कहींपर भी मेरा जन्म हो, वहाँपर मुझे आपका स्मरण सब समय बना रहे तथा सर्वदा आपके दासोंका सङ्ग मिलता रहे। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँपर भी आप अपने समस्त पार्षदोंके साथ अवतरित होवें, वहींपर मैं भी आपका दास होकर आपकी सेवा करूँ।"

यह सुनकर प्रभु बोले—"मुरारि! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम सब समय मेरे प्रिय ही बने रहोगे।" यह सुनकर वैष्णववृन्द आनन्दसे जय-जयकार करने लगे। तब प्रभु सभीसे कहने लगे—"सभी लोग ध्यानपूर्वक सुनें। यदि कोई व्यक्ति एक बार भी मुरारिकी निन्दा करेगा, तो करोड़ों बार गङ्गा स्नान करनेपर अथवा हरिनाम करनेपर भी उसका कल्याण नहीं होगा। बल्कि गङ्गा एवं हरिनाम ही उसका संहार कर डालेंगे। इसके हृदयमें मुरारि (कृष्ण) गुप्त रूपसे निवास करते हैं, इसीलिए इसका नाम मुरारिगुप्त है।"

## हरिदासपर कृपा

मुरारिगुप्तपर कृपा करनेके पश्चात् महाप्रभु हरिदास ठाकुर (जिन्हें ब्रह्माजी एवं प्रह्लादजीका मिलित स्वरूप कहा जाता है) से बोले—"हरिदास! तुम भी मेरा दर्शन करो। तुम तो मुझे मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। पापी मुसलमानोंने तुम्हें जो कष्ट दिये, उन्हें

स्मरणकर तो मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। हरिदास! जब दुष्ट मुसलमान तुम्हें बाइस बाजारोंमें मारते-मारते घुमा रहे थे, उस समय मैं तुम्हारा कष्ट सह नहीं पाया तथा क्रोधित होकर हाथमें चक्र लेकर उनका विनाश करनेके लिए वैकुण्ठसे वहाँपर आ गया था। अभी मैं उनके विनाशके लिए अपना चक्र छोड़ने ही वाला था कि सभीका हित चाहनेवाले परम दयालु तुमने मुझसे प्रार्थना की—'हे प्रभो! आप कृपापूर्वक इन लोगोंको क्षमा करें, क्योंकि ये अबोध हैं।' तुम्हारी ऐसी प्रार्थनाने मेरे चक्रको रोक दिया। परन्तु वे दुष्ट निर्दयतापूर्वक तुम्हें कोड़ोंसे पीटते ही जा रहे थे। मैं तुम्हें इस प्रकार पिटता हुआ नहीं देख सका। अतः तुम्हारे पीठपर होनेवाले प्रहारोंको मैंने अपनी पीठपर सहन किया। यदि विश्वास न हो, तो ये देखो कोड़ोंके निशान।" ऐसा कहकर प्रभुने अपनी पीठ दिखायी तो मक्खनसे भी अधिक कोमल उनकी पीठपर गहरे-गहरे कोड़ोंके निशानोंको देखकर सभीको बहुत दुःख हुआ। हरिदासकी दशा तो विचित्र ही हो गयी। अपने प्रति प्रभुकी कृपा देखकर उनकी आँखोंसे गङ्गा-यमुनाकी भाँति अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा वे रोते-रोते प्रभुके श्रीचरणोंसे लिपट गये। उन्हें इस प्रकार विकलतापूर्वक रोता देखकर प्रभुकी आँखें भी छलछला आयीं। वे हरिदासको सान्त्वना देते हुए कहने लगे—"हरिदास! मैं इस धरा-धामपर कुछ विलम्बसे आनेवाला था, परन्तु तुम्हारे दुःखको सहन कर पानेके कारण अतिशीघ्र ही आ गया।" इस प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा अपने प्रेमी भक्तोंकी रक्षाके लिए तथा जगत्में उनका सम्मान बढ़ानेके लिए क्या कुछ नहीं कहते और क्या कुछ नहीं करते?

## मुकुन्दपर कृपा

महाप्रभु अपने भगवदावेशमें थे। जब सभी लोग प्रभुसे वरदान माँग रहे थे, उस समय प्रभुके प्रधान कीर्त्तनीया मुकुन्द द्वारके बाहर बैठे हुए थे। उनका साहस नहीं हो रहा था कि वे प्रभुके समक्ष जा सकें। मुकुन्द तो सभीके प्रियपात्र थे। कोई भी समझ नहीं पा रहा था कि प्रभु सभीको बुला-बुलाकर उनपर कृपा कर रहे

हैं, परन्तु प्रभुका प्रधान कीर्त्तनीया मुकुन्द जो कि यहींपर बैठा है, उसे नहीं बुला रहे हैं, आखिर इससे क्या अपराध हो गया? यह देखकर सभीको बहुत कष्ट हो रहा था। कुछ क्षण पश्चात् श्रीवास पण्डितने साहस करके प्रभुसे पूछ ही लिया—"हे प्रभो! हे जगत्के नाथ! मुकुन्दने ऐसा क्या अपराध किया है कि जो आपने सबपर तो कृपा की, परन्तु मुकुन्दपर कृपा नहीं की। मुकुन्द तो आपका प्रिय है तथा हम सभीको भी प्राणोंके समान प्यारा है। जब वह कीर्त्तन करता है, तो पाषाण-हृदयवाले व्यक्तिका हृदय भी पिघल जाता है। यदि इससे कुछ अपराध भी हो गया हो, तो आप कृपाकर इसे दण्ड दीजिये, परन्तु इस प्रकार अपने सेवकको अपनेसे दूर मत कीजिये। अतः आप इसे क्षमाकर अपने पास बुलाइये। यदि आप नहीं बुलायेंगे, तो यह आपके सम्मुख नहीं आ पायेगा।"

यह सुनकर प्रभु कुछ रोषपूर्वक कहने लगे—"श्रीवास! आपलोग फिरसे ऐसी बात मत कहना तथा इसके लिए मेरे पास प्रार्थना भी मत करना। यह खड़जाठिया है अर्थात् यह जहाँ जाता है, वहाँ वैसा ही बन जाता है। जब यहाँपर रहता है अर्थात् वैष्णव-मण्डलीमें रहता है, तो दाँतोंमें तृण धारण करता है अर्थात् अपनी दीनता प्रकाशित करता है, अपनेको मेरा अकिञ्चन दीन-हीन सेवक मानता है। परन्तु जब मायावादियोंकी मण्डलीमें जाता है, तो वहाँ जाकर मेरे स्वरूपको नहीं मानता। मुझे निराकार, निर्विशेष इत्यादि कहकर तथा भक्तिको अनित्य मानकर मेरे शरीरपर जाठी (लाठी) से प्रहार करता है। इस प्रकार इसका भक्तिदेवीके श्रीचरणोंमें अपराध हुआ है। इसीलिए इसपर मेरी कृपा सम्भव नहीं है।"

मुकुन्द बाहरसे ही यह सब सुन रहे थे। वे विचार करने लगे कि बहुत समय पहले कुसङ्गके प्रभावके कारण मैंने भक्तिकी श्रेष्ठता स्वीकार नहीं की थी। अन्तर्यामी प्रभु इसे जानते हैं। इसलिए अब जब कि मुझपर उनकी कृपा नहीं होगी, तो इस पापी शरीरको ढोनेसे क्या लाभ जो प्रभुकी सेवामें ही नहीं लग सका। इसलिए मैं आज ही इस अपराधी शरीरको छोड़ दूँगा। ऐसा विचारकर वे श्रीवास पण्डितसे बोले—"हे श्रीवासजी! आप मेरी ओरसे कृपा करके

प्रभुसे पूछिये कि क्या कभी वे मुझे दर्शन देंगे।" ऐसा कहकर मुकुन्द फूट-फूटकर रोने लगे। उन्हें रोता देखकर वैष्णवोंका हृदय भी टुकड़े-टुकड़े हो गया तथा वे भी क्रन्दन करने लगे।

श्रीवास पण्डित प्रभुसे बोले—"प्रभो! मुकुन्द पूछ रहा है कि क्या आप उसपर कभी कृपा करेंगे?"

प्रभु—"एक करोड़ जन्मोंके बाद मैं उसपर कृपा करूँगा अर्थात् वह मेरा दर्शन पायेगा।"

बाहर बैठे मुकुन्दने जब सुना कि एक करोड़ जन्मोंके बाद प्रभु मुझे दर्शन देंगे तो उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे प्रसन्नतापूर्वक भुजाएँ उठाकर उद्दण्ड नृत्य करते हुए कहने लगे—"मुझपर प्रभुकी कृपा अवश्य होगी, अवश्य होगी।" उन्हें इस प्रकार आनन्दसे नाचते हुए देख प्रभु विश्वम्भर हँसने लगे। हँसते हुए उन्होंने आदेश दिया—"मुकुन्दको मेरे पास ले आओ।" यह सुनकर सभी वैष्णववृन्द मुकुन्दसे कहने लगे—"मुकुन्द! चलो, तुम्हें प्रभु बुला रहे हैं।" परन्तु मुकुन्दको तो होश ही नहीं रहा, वे तो आनन्दसे नाचे ही जा रहे थे। तब प्रभु स्वयं ही बोले—"मुकुन्द! तुम्हारे अपराध नष्ट हो गये हैं। अब तुम मेरे निकट आकर मेरा दर्शन करो।" तब सभी लोग मुकुन्दको पकड़कर भीतर ले आये। प्रभुके समीप जाते ही मुकुन्द प्रभुके श्रीचरणोंमें गिर पड़े।

प्रभु बोले—"मुकुन्द! उठो। तुम मेरा दर्शन करो। अब तुम्हारा अपराध नहीं रहा। सङ्ग-दोषके कारण ही तुम्हारा अपराध हुआ था। परन्तु अब तुम्हारा वह असत्सङ्ग दोष नष्ट हो गया है। मेरे यह कहनेपर कि करोड़ जन्मोंके बाद तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा होगी, तुम्हारी जो स्थिति हुई उसके द्वारा तुमने करोड़ जन्म एक क्षणमें ही बिता दिये। मेरे वचनोंपर इतना दृढ़ विश्वास करके तुमने मुझे अपने हृदयमें बाँध लिया। मैं तुमसे पराजित हो गया। यथार्थ बात तो यह है कि तुम मुझे बहुत प्रिय हो। अतः प्रिय होनेके कारण ही मैंने तुमसे हास-परिहास किया, जब कि वास्तविक बात तो यह है कि यदि तुम कोटि-कोटि अपराध भी करो, तो भी तुम मेरे प्रिय ही बने रहोगे।"

प्रभुकी इन सान्त्वना और स्नेहपूर्ण बातोंको सुनकर मुकुन्द रोते-रोते अपनेको धिक्कारते हुए कहने लगे—"हे प्रभो! मैंने अपने इसी पापी मुखसे भक्तिकी नित्यताको अस्वीकार किया। अतः मेरे जैसा भक्तिरहित व्यक्ति आपके मनोहर रूपका दर्शन करके भी क्या सुख प्राप्त कर सकता है? कदापि नहीं। जैसे—दुर्योधनने आपके विश्वरूपका दर्शन किया, जिसे दर्शन करनेके लिए बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एवं स्वयं वेद भी इच्छा करते हैं, परन्तु भक्तिरहित होनेके कारण ऐसे दुर्लभ विश्वरूपका दर्शन करनेपर भी उसे आनन्द नहीं हुआ, बल्कि आपसे द्वेष करनेके कारण वह सवंश नष्ट हो गया। जब पृथ्वीदेवीका उद्धार करनेके लिए आप वराह (शूकर) रूपमें प्रकट हुए और आपने पृथ्वीदेवीको अपने दाँतोंपर धारण किया था, उस समय आपकी जो शोभा हुई, उस मनोहर रूपका दर्शन करनेके लिए वेद भी लालायित रहते हैं। परन्तु उसी अद्भुत स्वरूपका दर्शन करके भी हिरण्याक्षको आनन्द नहीं हुआ, बल्कि उसके भीतर क्रोधकी ज्वाला धधकने लगी, क्योंकि उसके हृदयमें लेशमात्र भी भक्ति नहीं थी। इसी प्रकार एक ओर जहाँ कुब्जा, यज्ञपत्नियाँ, अक्रूर आदि सभी लोग आपका दर्शन पाकर धन्य हो गये, वहीं दूसरी ओर कंस, जरासन्ध आदि राजा आपका दर्शन करनेपर भी द्वेष भावके कारण सर्वनाशको प्राप्त हुए। उसी प्रकार मैं भी भक्तिरहित होनेके कारण आपके स्वरूपका कैसे दर्शन कर सकता हूँ?" ऐसा कहकर मुकुन्द दोनों भुजाएँ उठाकर "हा गौर! हा गौरसुन्दर!" कहकर आर्तनाद करने लगे।

उन्हें इस प्रकार व्याकुलतापूर्वक खेद करते हुए देखकर प्रभु कहने लगे—"मुकुन्द! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुम जहाँपर भी कीर्त्तन करोगे, मैं वहींपर अवतरित हो जाऊँगा। तुमने जितनी बातें कहीं, वे सब सत्य हैं। भक्तिके बिना मुझे कोई भी नहीं देख सकता। जिसका तन, मन, वचन सबकुछ मुझमें अर्पित है, केवल वे ही मेरा दर्शन कर सकते हैं और तुम मेरे ऐसे ही भक्त हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम जिस प्रकार मुझे प्रिय हो, उसी प्रकार सभी वैष्णवोंके भी प्रिय बने रहोगे। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँपर

भी मेरा अवतार होगा, वहींपर तुम मेरे कीर्त्तनमें रहोगे।" मुकुन्दके प्रति प्रभुका वरदान सुनकर सभी वैष्णववृन्द हर्षपूर्वक जय-जयकार करने लगे।

## जगाइ-माधाइका उद्धार

एक दिन प्रभु श्रीगौरसुन्दरने श्रीहरिदास ठाकुर एवं श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुको घर-घर जाकर लोगोंको कृष्णनाम करनेका उपदेश प्रदान करनेका आदेश दिया। प्रभुके आदेशको शिरोधार्यकर वे दोनों आनन्दसे कृष्णनामका प्रचार करनेके लिए चल पड़े। प्रचार करते-करते एक दिन उन्होंने एक स्थानपर मार्गमें दो शराबियोंको शराब पीकर नशेमें धुत्त देखा। कभी वे एक-दूसरेको गाली-गलौज कर रहे थे, कभी एक दूसरेसे मारपीट कर रहे थे, तो कभी एक दूसरेका आलिङ्गन कर रहे थे। इस दृश्यको देखकर जब नित्यानन्द प्रभुने आस-पासके लोगोंसे उन दोनोंके विषयमें पूछा, तो लोगोंने उन्हें बताया कि ये दोनों जातिके ब्राह्मण हैं। इनका कुल बहुत ही पवित्र और उज्ज्वल था। पूरे नवद्वीप शहरमें इनके पूर्वजोंका नाम प्रसिद्ध था। परन्तु दुष्टोंका सङ्ग करनेके कारण ये दोनों चरित्रसे भ्रष्ट हो गये। दुष्टोंके साथ मिलकर इन्होंने शराब पीना, जूआ खेलना, मांस खाना तथा इसके अतिरिक्त जितने प्रकारके पाप कर्म हो सकते हैं, उन सभीको करना आरम्भ कर दिया। आज ऐसी अवस्था है कि इनका नाम सुनकर यहाँका बच्चा-बच्चा भयभीत रहता है। ये कभी भी किसीके भी घरमें आग लगा देते हैं, घरको लूट लेते हैं, स्त्रियोंका अपहरण कर लेते हैं। जिस स्थानपर ये लोग अपना डेरा डाल देते हैं, उस मार्गसे स्त्रियाँ एवं सज्जन पुरुष भूलकर भी नहीं जाते। सन्ध्याके पश्चात् कोई अपने घरसे बाहर नहीं निकलता। यदि किसी कारणवश निकलना भी पड़े, तो लोग दल बनाकर बाहर निकलते हैं।

यह सुनकर तथा उन दोनोंकी दुर्दशा देखकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि मेरे प्रभुका नाम पतितपावन है और इनसे बड़ा पतित भला दूसरा कौन हो सकता है? यदि मेरे प्रभु इन दोनोंका उद्धारकर कृष्णप्रेममें मत्तकर इन्हें नचा दें, तभी मेरे प्रभुका पतितपावन नाम सार्थक होगा

और जो लोग मेरे प्रभुकी निन्दा करते हैं, वे लोग भी मेरे प्रभुकी महिमाको जान जायेंगे। ऐसा विचारकर उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुरसे कहा—"हरिदासजी! प्रभुका आदेश है कि सभीको कृष्णनामका उपदेश प्रदान करो। मैं देख रहा हूँ कि सामने जो दो शराबी नशेमें धुत्त होकर पागलों जैसी हरकतें कर रहे हैं, ये ही हरिनामके उपदेशके वास्तविक अधिकारी हैं। सज्जन पुरुषोंको यदि उपदेश प्रदानकर उनके मुखसे कृष्णनाम निकलवा दिया, तो इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व तो तब है, जब आचरणसे भ्रष्ट एवं पशुके समान व्यक्तिके मुखसे कृष्णनाम निकलवा दिया जाय। अतः चलिये, हम इन्हें प्रभुका उपदेश सुनावें।"

ऐसा निश्चयकर वे दोनों जगाइ-माधाइकी ओर जाने लगे। उन्हें उस ओर जाते देखकर भले लोगोंने उन्हें समझाया—"महात्माजी! आप कृपा करके उस ओर मत जाइये। वे दोनों अच्छे लोग नहीं हैं। उन्हें साधु और असाधुका ज्ञान नहीं है। बल्कि वे साधुओंको देखकर खूब चिढ़ते हैं। यदि आप वहाँ गये, तो हो सकता है कि वे आपपर अत्याचार करें।" परन्तु परमदयालु श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु लोगोंके समझानेपर भी नहीं माने, क्योंकि उन्होंने मनमें ठान लिया था कि किसी भी प्रकारसे इन दोनोंका उद्धार करना है। साधुओंका स्वभाव ऐसा ही होता है। दूसरोंका कल्याण करनेके लिए वे अपने हित-अहितका भी विचार नहीं करते। अतः जगाइ-माधाइके स्वभावको जानते हुए भी वे दोनों उनके निकट पहुँच ही गये। वहाँ पहुँचकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुने बहुत ही मधुर एवं विनम्र स्वरसे कहा—"भाइयो! आपलोग 'कृष्ण कृष्ण' कहिये।" इतना सुनते ही उन दोनोंने उनकी ओर सिर उठाकर देखा। नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुरको अपने सामने देखकर क्रोधके कारण उनकी आँखोंसे अङ्गारे बरसने लगे। वे क्रोधसे काँपते हुए उठ खड़े हुए और पकड़ो-पकड़ो कहते हुए इनकी ओर दौड़े। उन्हें अपनी ओर आते हुए देखकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास ठाकुर वहाँसे भाग खड़े हुए। जगाइ और माधाइ भी वहाँपर रुके नहीं, बल्कि उन्हें पकड़नेके लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। शराबके नशेमें धुत्त होनेके कारण वे दोनों लड़खड़ाते हुए दौड़ रहे थे। अतः कुछ दूर

जाकर वे रुक गये श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास ठाकुर भागते-भागते श्रीमन्महाप्रभुके पास पहुँच गये। श्रीहरिदास ठाकुरने सारी घटना प्रभुको कह सुनायी कि इस नित्यानन्दके कारण आज मेरे भी प्राण जाते-जाते किसी प्रकारसे बच गये। आपने मुझे इस अवधूत (पागल) के साथ भेज दिया और आज यह चल दिया, दो शराबियोंको उपदेश देनेके लिए। फलस्वरूप कहाँ तो उनका उद्धार होता, ऐसा न होकर बड़ी कठिनतासे हमारे ही प्राण बचे।

प्रभु क्रोधित होकर कहने लगे—"मैं उन दोनोंको जानता हूँ। यदि वे यहाँ आ गये, तो मैं उनका वध कर दूँगा।"

यह सुनते ही श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु बोले—"आप उनका वध कीजिये या कुछ भी कीजिये, परन्तु जब तक वे यहाँ रहेंगे, हम प्रचार करने नहीं जायेंगे।"

प्रभु उनके मनकी बात जानकर मुसकराते हुए बोले—"श्रीपाद! जब आपको उनके उद्धारकी चिन्ता हो गयी है, तो उनका उद्धार तो हो ही गया।" कुछ दिन बाद उन दोनों (जगाइ-माधाइ) ने प्रभुके घरके समीप ही गङ्गाके किनारे अपना डेरा जमा लिया।

एक दिन श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जान-बूझकर उसी मार्गसे आ रहे थे, जहाँपर उन दोनोंने अपना डेरा जमाया हुआ था। जब वे उनके निकटसे गुजर रहे थे, तो उन्होंने पूछा—"तू कौन है रे?"

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु बाल्यभावमें आविष्ट होकर बोले—"मैं अवधूत (पागल) हूँ।"

इतना सुनते ही दोनों गरजते हुए कहने लगे—"तेरा इतना साहस कि तू हमसे मजाक करता है? हमारा नाम सुनकर सारा नवद्वीप काँपता है। तुझे अभी इसका मजा चखाते हैं।" ऐसा कहकर माधाइने शराबका घड़ा खींचकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुके मस्तकपर दे मारा, जिससे श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुका मस्तक फट गया तथा उससे रक्तकी धारा बहने लगी।

आस-पासके लोग जो इस घटनाको देख रहे थे, वे दौड़कर गये तथा श्रीमन्महाप्रभुको सारी बात बतायी। महाप्रभु तुरन्त ही अपने परिकरोंके साथ दौड़ते हुए वहाँपर आ पहुँचे। जैसे ही उन्होंने श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुके मस्तकसे रक्तकी धारा बहते हुए देखी, वे धैर्य

खो बैठे तथा 'चक्र–चक्र' कहकर अपने चक्रको बुलाने लगे। उसी समय चक्र प्रभुके हाथोंमें आ पहुँचा, जिसे केवल जगाइ–माधाइ एवं प्रभुके परिकरोंने ही देखा। चक्रको देखते ही जगाइ–माधाइ भयभीत होकर काँपने लगे। उसी समय श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुने श्रीगौरसुन्दरसे प्रार्थना की—"प्रभु! आपने प्रतिज्ञा की है कि इस अवतारमें आप किसीको प्राणोंसे नहीं मारेंगे, बल्कि कृष्णनाम प्रदानकर पापियोंका भी उद्धार करेंगे, और फिर जगाइने तो मेरी रक्षा की है।"

यह सुनते ही महाप्रभुने जगाइको आलिङ्गन कर लिया और बोले—"तुमने मेरे प्रिय श्रीमन् नित्यानन्दकी रक्षा की। मैं तुम्हारे हाथों बिक गया।" महाप्रभुके आलिङ्गनसे जगाइ रोते-रोते हरिनाम करने लगा।

जगाइके ऊपर महाप्रभुकी कृपा देखकर माधाइका हृदय भी परिवर्तित हो गया। वह भी महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर कहने लगा—"हे प्रभु! पाप तो हम दोनोंने एक साथ ही किये हैं। फिर जगाइके ऊपर आप कृपा कर रहे हैं, मेरे ऊपर क्यों नहीं? शास्त्रोंमें ऐसे अनेक प्रमाण हैं कि जिन असुरोंने आपके साथ शत्रुता की, आपके ऊपर प्रहार किया, आपने उनका भी उद्धार किया। अतः आप मेरा भी उद्धार कीजिये।"

यह सुनकर प्रभु क्रोधित होकर कहने लगे—"रे दुष्ट! उन असुरोंने मुझपर प्रहार किया और तूने मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीमन् नित्यानन्दके मस्तकसे रक्तकी धारा बहायी है। तू नहीं जानता है कि मेरे भक्त मुझे अपने प्राणोंसे भी प्रिय हैं। अतः मैं तुझे क्षमा नहीं कर सकता। काँटा जहाँ गड़ता है, वहींसे निकलता है। यदि श्रीनित्यानन्द तुझे क्षमा कर दें, तभी तेरे प्राण बच सकते हैं, अन्यथा कोई उपाय नहीं।"

यह सुनकर माधाइ श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। नित्यानन्द प्रभुने मुसकराते हुए उसे अपने हृदयसे लगा लिया तथा कहने लगे—"प्रभो! मैंने माधाइका अपराध लिया ही नहीं। यदि मैंने किसी भी जन्ममें कुछ भी सुकृति की हो, तो मैं उसे माधाइको देता हूँ। अतः आप इसपर अपनी निष्कपट कृपा कीजिये।"

यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जगाइ-माधाइसे कहने लगे—"तुम दोनोंने आज तक जितने पाप किये थे, वे सब मैंने ले लिये। परन्तु अब तुमलोग कान पकड़ लो कि कभी भी किसी भी प्रकारका पाप नहीं करोगे। इस प्रकार तुम मेरे अत्यन्त प्रिय रहोगे तथा मैं तुम दोनोंके मुखसे ही भोजन करूँगा।"

प्रभुकी ऐसी परम दयालुता देखकर जगाइ-माधाइ भावविभोर होकर रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। तब प्रभु अपने परिकरोंसे कहने लगे—"अब ये दोनों पापी नहीं रहे। इनसे कोई भी व्यक्ति घृणा

मत करना। आज तक किसी पर इनकी परछाई पड़नेपर वह व्यक्ति अपने आपको अपवित्र मानकर गङ्गास्नान करता था, परन्तु आजसे इन दोनोंका दर्शन करके ही उसे गङ्गास्नानका फल प्राप्त होगा।" कुछ क्षण पश्चात् जब जगाइ-माधाइकी मूर्च्छा दूर हुई, तो प्रभु कहने लगे—"तुम दोनों मेरे दास बन गये हो। तुम्हारे जितने भी पाप थे, सब मैंने ले लिये। आजसे तुमलोग सदाचारसम्पन्न होकर निरन्तर हरिनाम करना। कलियुगका साधन-भजन हरिनाम-सङ्कीर्त्तन है। वह हरिनाम है—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।"

तब प्रभुने अपने भक्तोंको आदेश दिया कि तुम सब लोग मिलकर कीर्त्तन करो। सभी भक्त कीर्त्तन करने लगे। वे दोनों रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभो! आज तक हम दोनोंने बहुत-से लोगोंको कष्ट पहुँचाया है, जिसकी कोई गिनती नहीं है। अतः आप कृपापूर्वक कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे कि हमारे अपराध नष्ट हो जाएँ।"

प्रभु मुसकराते हुए बोले—"तुम दोनों प्रतिदिन प्रातःकाल गङ्गाजीके घाटपर जाना। घाटकी सफाई करना तथा घाटपर स्नान करनेके लिए जितने भी लोग आयेंगे, उनकी चरणधूलिको अपने मस्तकपर धारण करना तथा उनसे निवेदन करना कि यदि ज्ञात अथवा अज्ञातमें हमसे आपके चरणोंमें कोई अपराध हुआ हो, तो आप कृपापूर्वक क्षमा करें तथा हमपर प्रसन्न हो जायें।" तबसे वे दोनों यत्नपूर्वक प्रभुका आदेश पालन करने लगे। जिस घाटपर वे लोग सफाई करते तथा लोगोंसे अपने अपराधोंके लिए क्षमा माँगते, वह घाट उनके नामके अनुसार ही 'जगाइ-माधाइ घाट' के नामसे प्रसिद्ध हो गया। जगाइ-माधाइकी ऐसी परिवर्त्तित अवस्थाको देखकर सभी लोग प्रभुका गुणगान करने लगे।

## काजी-उद्धार

गयासे लौटनेके पश्चात् श्रीगौरसुन्दरने सङ्कीर्त्तन-धर्मका प्रचार आरम्भ कर दिया था। सर्वप्रथम श्रीवास पण्डितके घरमें कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् सभी भक्तलोग अपने-अपने घरोंमें कीर्त्तन

करने लगे। यह समाचार जब नवद्वीपके मुसलमान शासक चाँदकाजीके पास पहुँचा तो वह क्रोधित होकर अपने सैनिकोंके साथ एक भक्तके घर पहुँच गया, जहाँपर कीर्त्तन हो रहा था। वहाँ पहुँचकर उसने मृदङ्गको जमीनपर पटककर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा कीर्त्तनमें सम्मिलित वैष्णवोंको चेतावनी देते हुए बोला—"आज तो मैंने मात्र मृदङ्ग ही फोड़ा है। यदि पुनः यहाँपर कीर्त्तन हुआ तो सभीको कठोर सजा दूँगा और सबकी जाति नष्ट कर दूँगा।" ऐसा कहकर वह चला गया।

अब तो काजीके भयसे कीर्त्तन बन्द हो गया। जब यह घटना प्रभुके कानोंमें पहुँची तो वे क्रोधित हो गये। उन्होंने सभी वैष्णवोंको एकत्रित किया तथा उनसे बोले—"उस दुष्ट काजीका इतना साहस कि वह मेरा कीर्त्तन बन्द करायेगा। अच्छी बात है। आज तक कीर्त्तन घरके अन्दर होता था, परन्तु कल इस नवद्वीपकी गलियोंमें विशाल नगर-सङ्कीर्त्तन होगा। तब देखूँगा कि वह काजी या उसके सिपाही हमारा क्या बिगाड़ते हैं। अतः तुम सब लोग कल सन्ध्याके समय अपने-अपने घरोंको सजाना और हाथोंमें मशाल जलाकर महानगर-सङ्कीर्त्तनमें सम्मिलित होना।"

यह सुनकर भक्तोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी तथा वे उत्कण्ठासे अगले दिनकी प्रतीक्षा करने लगे। दूसरे दिन सन्ध्याके समय हजारोंकी संख्यामें भक्तलोग प्रभुके घरपर उपस्थित हुए तथा वहाँसे एक विशाल सङ्कीर्त्तन-यात्रा आरम्भ हो गयी। उस यात्रामें कितने ही मृदङ्ग, करताल, झाँझर इत्यादि वाद्य बज रहे थे तथा हजारों भक्तवृन्द उच्च-स्वरसे महामन्त्रका कीर्त्तन कर रहे थे। सबके हाथोंमें मशालें थी। धीरे-धीरे यात्रा काजीके महलकी ओर ही जा रही थी। जब यात्रा काजीके महलके निकट पहुँच गयी तो काजीने भयके कारण द्वार बन्द कर दिये तथा स्वयं भीतर छिपकर बैठ गया। यात्रामें उपस्थित युवाओंने जोशमें भरकर काजीके बगीचोंको ही उजाड़ना आरम्भ कर दिया।

जब श्रीमन्महाप्रभुने देखा कि काजीने द्वार बन्द कर दिये हैं, तो उन्होंने कुछ भक्तोंको उसे बुलानेके लिए भेज दिया तथा स्वयं महलके बाहर ही बैठ गये। कुछ क्षण पश्चात् सिर झुकाये हुए काजी श्रीमन्महाप्रभुके समक्ष उपस्थित हुआ। भयसे उसका सारा शरीर

काँप रहा था। उसे अपने निकट देखकर प्रभु कोमल वाणीसे कहने लगे—"अरे काजी! मैं आज तुम्हारे घरपर अतिथि बनकर आया हूँ, परन्तु तुम घरके भीतर छिपकर बैठ गये। यह तो उचित नहीं है। द्वारपर आये अतिथिका अवश्य ही सम्मान करना चाहिये।"

उसी समय काजीने प्रभुके चरण पकड़ लिये। यह देखकर वहाँपर उपस्थित भक्तोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। काजीको इस प्रकार अपने चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर श्रीमन्महाप्रभुने बड़े प्रेमसे उसे उठाया तथा उससे पूछने लगे—"काजी महाशय! देखो तो, ये हजारों लोग तुम्हारे आदेशकी अवहेलना कर रहे हैं, अतः इन्हें दण्ड प्रदान करो।" यह सुनते ही काजी रोने लगा। उसे रोते देखकर प्रभुने पूछा—"क्या बात है, काजी महाशय! आप इन्हें दण्ड प्रदान क्यों नहीं कर रहे हैं?" काजीने प्रभुसे निवेदन किया कि मैं आपसे एकान्तमें कुछ कहना चाहता हूँ। प्रभु बोले—"एकान्तमें नहीं, जो कुछ कहना है, यहींपर सबके सामने कहो। ये सब मेरे अपने ही लोग हैं।"

यह सुनकर काजी बोला—"हे प्रभो! आप सब जानते हैं, फिर भी इन लोगोंकी जानकारीके लिए आप मुझसे कहलवाना चाहते हैं, तो कृपापूर्वक सुनिये। कुछ दिन पहले मैंने एक भक्तके घर जाकर मृदङ्ग फोड़ दिया तथा घरके लोगोंको अपमानितकर अपने महलमें आ गया। उसी दिन आधी रातको जब मैं सो रहा था, तो अचानक एक अद्भुत प्राणी मेरी छातीपर चढ़कर बैठ गया। उसके शरीरका ऊपरका हिस्सा तो शेर जैसा तथा नीचेका मनुष्य जैसा था। वह गुस्सेमें दहाड़ते हुए बोला—'अरे दुष्ट! तूने मेरा मृदङ्ग तोड़ा तथा मेरा कीर्त्तन बन्द कराया, इसके बदलेमें मैं तेरी छातीको फाड़ देता हूँ।' ऐसा कहते ही उसने अपने तीखे नाखूनोंको मेरी छातीमें घुसा दिया। मैं भयभीत होकर चिल्ला उठा तथा उससे क्षमा प्रार्थना की, जिससे उसका क्रोध कुछ शान्त हुआ तथा वह मुझसे गरजते हुए बोला—'ठीक है, आज तो मैं तुझे क्षमा करता हूँ। परन्तु पुनः यदि तूने या तेरे वंशमें किसीने भी मेरे कीर्त्तनमें बाधा पहुँचायी तो तेरे सारे वंशको ही नष्ट कर दूँगा।' ऐसा कहकर वह प्राणी अन्तर्धान हो गया।" ऐसा कहकर काजीने अपनी छाती दिखायी, तो वहाँपर नाखूनोंके निशान थे। काजीके मुखसे यह घटना सुनकर

सभी भक्तलोग समझ गये कि वह प्राणी और कोई नहीं, अपितु हमारे प्रभु ही थे जिन्होंने भक्तोंकी रक्षाके लिए नरसिंहरूप धारण किया था। श्रीमन्महाप्रभु काजीसे बोले—"काजी! अब तुम भी हमारे सङ्कीर्त्तनमें सम्मिलित हो जाओ, जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।" यह सुनकर काजी बोला—"प्रभो! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे वंशमें यदि किसीने कीर्त्तनका विरोध किया, तो मैं उसे तलाक दे दूँगा।" उसके ऐसा कहते ही प्रभुने उसे आलिङ्गन कर लिया। प्रभुका स्पर्श पाते ही वह प्रेममें पागल हो गया और नृत्य करते-करते कीर्त्तन करने लगा। इस प्रकार प्रभुकी अहैतुकी कृपासे काजी परम-वैष्णव बन गया। वह काजी प्रभुका इतना प्रिय हो गया कि जब उसकी मुत्य हुई, तो प्रभुने स्वयं अपने हाथोंसे उसे समाधि प्रदान की तथा उसकी समाधिपर गोलोक-चम्पकफूलका वृक्ष लगाया, जो आज तक वैष्णव-तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है।

## संन्यास-ग्रहण

श्रीकृष्णके प्रति व्रजगोपियोंका तथा उनमें भी विशेष रूपसे श्रीमती राधिकाजीका अप्राकृत प्रेम ही दिव्य-प्रेमकी चरमसीमा है। श्रीकृष्ण राधिकाजीके ऐसे भावोंका आस्वादन करनेके लिए तथा जगत्में उसकी शोभा अर्थात् मञ्जरीभावका वितरण करनेके लिए ही श्रीमन्महाप्रभुके रूपमें अवतरित हुए थे। एक दिन वे अपनेको वृन्दावन-वासिनी गोपकन्या जानकर श्रीमती राधिकाजीके उद्देश्यसे 'गोपी गोपी' कह रहे थे। उसी समय महाप्रभुके कुछ विद्यार्थी वहाँ उपस्थित हुए और प्रभुको गोपी-नामका उच्चारण करते देखकर मूर्खतावशतः उनसे कहने लगे—"पण्डितजी! कलिकालमें कृष्णनाम ही संसारसे उद्धार होनेका तारक मन्त्र है, परन्तु आप उसका परित्यागकर 'गोपी-नाम' उच्चारणपूर्वक क्यों विपथगामी हो रहे हैं?" यह सुनकर भावाविष्ट महाप्रभुने उन्हें कृष्णपक्षीय जानकर उनसे कहा—"जिसने बिना दोषके ही वानरराज बालिका वध कर दिया, जिसने बलि महाराजका सर्वस्व हरणकर उन्हें पातालमें भेज दिया तथा स्त्रीजित होकर भी एक स्त्री जो उनसे प्रेमकी भिक्षा माँग रही थी, उसकी नाक काट दी, ऐसे कृष्णका भजन करनेसे मेरा क्या कल्याण होगा।" ऐसा कहकर महाप्रभु एक छड़ी हाथमें लेकर उन छात्रोंको मारनेके लिए दौड़े। यह देखकर वे छात्र भयभीत होकर वहाँसे भाग गये तथा अपने साथियोंके साथ मिलकर योजना बनाने लगे कि अब यदि पुनः निमाइने हमपर आक्रमणकी चेष्टा की, तो हम सब भी मिलकर उसपर आक्रमण करेंगे। विद्यार्थियोंकी ऐसी योजनाको जाननेपर महाप्रभुने विचार किया कि मैं इस जगत्में प्रेमभक्ति प्रदानकर लोगोंका उद्धार करनेके लिए आया हूँ, परन्तु ये तो मेरे ही विरोधी होते जा रहे हैं। ऐसे आचरणसे तो ये और भी घोर नरकमें चले जायेंगे। अतः मैं अब संन्यासवेश धारण करूँगा, जिससे मेरे प्रति एक संन्यासीकी बुद्धि रखकर ये मुझे सम्मान देंगे तथा मुझे प्रणाम करेंगे। इस प्रकार इनका कल्याण हो जायेगा। ऐसा विचारकर प्रभुने संन्यास ग्रहण करनेका निश्चय किया तथा एक दिन रात्रिके समय चुपचाप घरसे निकलकर अपने कुछ भक्तोंके साथ कटवा पहुँच गये। वहाँ

जाकर केशवभारती नामक एक संन्यासीसे संन्यासवेश धारण किया। संन्यासके उपरान्त प्रभुका नाम श्रीकृष्णचैतन्य हुआ।

## सार्वभौमका उद्धार

संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् प्रभु श्रीगौरसुन्दर प्रेममें उन्मत्त होकर वृन्दावनकी ओर चल दिये, परन्तु नित्यानन्द प्रभु छलपूर्वक उन्हें शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर ले आए। वहाँसे वे अपनी माँ श्रीशचीमातासे आज्ञा लेकर कुछ परिकरोंके साथ नीलाचल पहुँचे। पुरीसे कुछ दूरी पर ही श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनका दण्ड तोड़कर नदीमें प्रवाहित कर दिया। इससे श्रीमन्महाप्रभु दुःखित होकर अकेले ही आगे चल पड़े और श्रीमन्दिरमें उपस्थित हुए। मन्दिरमें श्रीजगन्नाथदेवका दर्शनकर प्रेमाविष्ट होकर वे उन्हें आलिङ्गन करनेके लिए दौड़े। परन्तु बीचमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह देखकर वहाँके पण्डे प्रभुको पागल समझकर उन्हें मारनेको तैयार हो गये। उसी समय सौभाग्यसे वहाँपर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य भी विराजमान थे। वे वहाँके राजपुरोहित थे। उन्होंने जब प्रभुके सौन्दर्य तथा उनके दिव्य भावोंका दर्शन किया तो वे मुग्ध हो गये। वे समझ गये कि ये अवश्य ही कोई असाधारण महापुरुष हैं। अतः उन्होंने पण्डोंको मारनेसे रोक दिया तथा प्रभुको अपने घर ले गये। बादमें जब श्रीनित्यानन्द एवं मुकुन्द आदि मन्दिरमें पहुँचे तथा उन्हें पता चला कि श्रीमन्महाप्रभु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घरपर हैं, तो वे भी वहाँ पहुँच गये। परन्तु प्रभु अभी तक प्रेममें आविष्ट होनेके कारण मूर्च्छित ही पड़े हुए थे। जब सभी भक्तवृन्द मिलकर जोर-जोरसे कीर्त्तन करने लगे, तो प्रभु उठकर बैठ गये।

सार्वभौम भट्टाचार्य बहुत बड़े वैदान्तिक पण्डित थे। वे गृहस्थ होकर भी बड़े-बड़े मायावादी संन्यासियोंको वेदान्त पढ़ाते थे। वे भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला इत्यादिको नित्य नहीं, बल्कि मायिक मानते थे। उनका कहना था कि वास्तवमें ब्रह्म निराकार है, जब वह मायाकी विद्यावृत्तिसे ग्रस्त होता है, तो वह साकार ब्रह्म या भगवान् कहलाता है। एक दिन भट्टाचार्य प्रभुके भक्तोंसे कहने लगे—"ये संन्यासी तो अभी बालक ही हैं। इन्होंने संन्यास

तो ले लिया, परन्तु संन्यासधर्मकी रक्षा कैसे कर पायेंगे? अतः मैं इन्हें वेदान्त पढ़ाऊँगा, जिससे इनका हृदय कठोर हो जायेगा तथा ये संसारमें नहीं फँसेंगे।" यह सुनकर भक्तलोग बोले—"भट्टाचार्यजी! आप इन्हें पहचान नहीं पाये। ये कोई साधारण संन्यासी नहीं, अपितु स्वयं-भगवान् हैं। जगत्को शिक्षा देनेके लिए ही इन्होंने संन्यासवेश धारण किया है।" भक्तोंके मुखसे ऐसा सुननेपर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

भक्तोंने जब यह बात प्रभुसे कही तो वे हँसते हुए बोले—"इसमें दुःखी होनेकी क्या बात है? मुझे तो प्रसन्नता है कि उनका मेरे प्रति वात्सल्यभाव है। तभी तो उन्हें मेरी चिन्ता लगी है। वे मुझे अपना पुत्र जैसा समझते हैं। अतः मैं उनसे अवश्य ही वेदान्त श्रवण करूँगा।"

दूसरे दिनसे सार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुको वेदान्त पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पढ़ते-पढ़ते सात दिन बीत गये। इन सात दिनोंमें प्रभुने न कुछ प्रश्न ही किया, न कुछ कहा। यह देखकर भट्टाचार्य आश्चर्यमें पड़ गये। अतः उन्होंने पूछा—"चैतन्य! आप सात दिनोंसे वेदान्त श्रवण कर रहे हैं, परन्तु एक बार भी आपने 'हाँ' अथवा 'न' कुछ नहीं कहा। मैं उलझनमें हूँ कि आप कुछ समझ रहे हैं कि नहीं।"

यह सुनकर प्रभु बोले—"भट्टाचार्यजी! वेदान्तसूत्रोंका अर्थ तो सूर्यके समान स्पष्ट प्रकाशित हो रहा है, परन्तु आपकी काल्पनिक व्याख्यारूपी बादलोंसे मानो वह ढक जाता है।" यह सुनकर भट्टाचार्य कुछ आश्चर्यचकित होकर बोले—"आज तक किसीने मेरी व्याख्यामें दोष नहीं निकाला और तुम एक नवीन बालक मेरी व्याख्यामें दोष निकाल रहे हो। यदि मेरी व्याख्या गलत है, तो तुम ही ठीक व्याख्या करो।"

इसपर प्रभुने जब सुन्दर ढङ्गसे वेदान्तसूत्रोंकी सविशेष-परक व्याख्या की, तो सार्वभौम अचम्भित रह गये। श्रीमन्महाप्रभुने कहा—"श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। उनका अप्राकृत मदनमोहन सुन्दर रूप है, वे अप्राकृत गुणोंके भण्डार हैं। इसलिए उन्हें गुणाकर भी कहते हैं। उनकी अनन्त दिव्यातिदिव्य लीलाएँ हैं, जो बड़े-बड़े आत्माराम मुनियोंके

मनको भी हरण कर लेती हैं। उनकी लीलाओंसे तो स्वयं ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित हो जाते हैं।" इसके लिए प्रभुने वेद-वेदान्त, उपनिषद आदिसे पुष्ट प्रमाणोंको प्रस्तुत किया।

यह सुनकर श्रीभट्टाचार्य अवाक रह गये। परन्तु फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि श्रीमन्महाप्रभु भगवान् हैं। तब महाप्रभु बोले—"भट्टाचार्यजी! आप कृपाकर 'आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थाऽप्युरुक्रमे' श्लोककी व्याख्या कीजिये।"

यह सुनकर भट्टाचार्यने इस श्लोककी नौ प्रकारकी अलग-अलग व्याख्या की। तब वे प्रभुसे बोले—"अब आप इस श्लोककी व्याख्या कीजिये।"

यह सुनकर प्रभुने इस श्लोककी अठारह प्रकारकी व्याख्याएँ कीं। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उन्होंने भट्टाचार्यके किसी

भी अर्थको स्पर्श नहीं किया तथा उनकी अपनी व्याख्याएँ भी एक दूसरेसे सम्पूर्ण रूपसे भिन्न थीं।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा ऐसी अपूर्व व्याख्योंको सुनकर भट्टाचार्यको विश्वास हो गया कि ये वास्तवमें ही कृष्ण हैं, क्योंकि इनके जैसा पाण्डित्य साधारण मनुष्यमें सम्भव नहीं है। अतः वे स्वयंको धिक्कारते हुए कहने लगे—"हे प्रभो! पाण्डित्यके अभिमानके कारण मैं आपको पहचान नहीं पाया। आपके साथ तर्क-वितर्क करनेके कारण मेरा भयङ्कर अपराध हो गया है।"

उनकी दीनता देखकर प्रभुकी उनपर कृपा करनेकी इच्छा हुई। अतः प्रभुने उन्हें अपना षड्भुजरूपका दर्शन कराया। यह देखकर भट्टाचार्य आनन्दसे रोते हुए पुनः-पुनः प्रभुको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने लगे। प्रभुकी कृपासे शास्त्रोंका वास्तविक तात्पर्य उनके हृदयमें प्रकट हो गया तथा उन्होंने देखते-ही-देखते एक-सौ श्लोकोंकी रचनाकर प्रभुकी स्तुति की। प्रभुने प्रसन्न होकर उन्हें गलेसे लगा लिया।

## दक्षिण भारतकी यात्रा

इस प्रकार कुछ दिन नीलाचलमें ही रहकर रथयात्राका दर्शनकर श्रीमन्महाप्रभु दक्षिण भारतके लोगोंका उद्धार करनेके लिए चल पड़े। श्रीमन्महाप्रभु प्रेममें उन्मत्त होकर कीर्त्तन करते हुए जा रहे थे। मार्गमें जो उनका दर्शन कर लेता, उसके मुखसे स्वतः ही कृष्ण-कृष्ण निकलने लगता। जब उस व्यक्तिको कोई दूसरा व्यक्ति देखता, तो वह व्यक्ति भी कृष्ण-कृष्ण बोलने लगता। इस प्रकार प्रभु गाँव एवं नगरोंको वैष्णव बनाते हुए चले जा रहे थे।

## कुष्ठ-विप्रका उद्धार

एक दिन मार्गमें प्रभु एक गाँवमें पहुँचे। उस गाँवमें कूर्म नामक एक विप्र रहते थे। वे भगवान्के परम भक्त थे। उन्होंने प्रभुको अपने घरमें भोजनके लिए आमन्त्रितकर उन्हें प्रेमपूर्वक अनेक प्रकारके व्यञ्जन खिलाये। इस प्रकार रात्रि वहीं व्यतीतकर प्रभु प्रातःकाल स्नान आदि नित्य-कृत्योंसे निवृत्त होकर वहाँसे आगे चल पड़े। उसी

गाँवमें वासुदेव नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसके समस्त शरीरमें गलित कुष्ठ-रोग हो गया था तथा उन घावोंमें कीड़े पड़ गये थे। जब उसके शरीरसे वे कीड़े नीचे गिर जाते, तो वह उन्हें उठाकर पुनः उन घावों पर रख देता था। रातको जब उसने सुना कि प्रभु कूर्म ब्राह्मणके यहाँ पधारे हैं, तो प्रातःकाल वह भी प्रभुके दर्शनोंके लिए आया। परन्तु जब उसने सुना कि प्रभु वहाँसे चले गये हैं, तो वह अत्यधिक दुःखसे मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा। कुछ देर बाद होशमें आनेपर वह बहुत विलाप करने लगा। उसी समय भक्तवत्सल भगवान् श्रीगौरसुन्दर वहाँपर प्रकट हो गये तथा उन्होंने ब्राह्मणको गलेसे लगा लिया। प्रभुका स्पर्श होते ही उसका रोग दूर हो गया तथा उसके शरीरसे दिव्य तेज निकलने गया। अब वह परमानन्दित होकर प्रभुकी स्तुति करते हुए रोते-रोते कहने लगा—"प्रभो! मैं रोगावस्थामें ही अच्छा था, क्योंकि मुझमें दीन-हीन भाव बना रहता था। परन्तु अब आपने मुझे दिव्य शरीर प्रदान कर दिया है, अतः अब तो मुझेमें अपने रूपका अहङ्कार आ जायेगा और मेरी भक्ति नष्ट हो जायेगी।" यह सुनकर प्रभु बोले—"विप्र! मेरी कृपासे तुम्हारे हृदयमें अहङ्कार नहीं आयेगा। तुम सदा-सर्वदा कृष्ण-कृष्ण कहना।" ऐसा कहकर प्रभु वहाँसे अन्तर्द्धान हो गये।

## बौद्ध-आचार्यका उद्धार

इस प्रकार जब प्रभु दक्षिण यात्राके समय मार्गमें लोगोंको वैष्णव बनाते जा रहे थे, तो वहाँके मायावादी, तार्किक, मीमांसक तथा बौद्ध आदि लोग इसे सह न सके। उन्होंने प्रभुको शास्त्रार्थके लिए ललकारा। परन्तु प्रभुने खेल-खेलमें ही उनके मतोंका खण्डनकर वैष्णव-मत (अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्व) की स्थापना की। एक दिन एक बौद्ध-आचार्य अपने बहुत-से शिष्योंको साथ लेकर श्रीमन्महाप्रभुसे शास्त्रार्थ करने आया, परन्तु प्रभुसे बुरी तरह पराजित हो गया। यह देखकर वहाँपर उपस्थित हजारों लोग बौद्ध-आचार्यका उपहास करने लगे तथा प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। इससे वह क्रोधित हो गया। प्रभुको वैष्णव जानकर वह अपने घर चला गया तथा वहाँ जाकर प्रभुको नीचा दिखानेके लिए विचार करने लगा। बहुत विचार करनेके बाद वह एक थालीमें अपवित्र एवं अखाद्य वस्तुओंको एक कपड़ेसे ढककर प्रभुके पास ले आया तथा प्रभुको प्रसादके नामपर देने लगा। अन्तर्यामी प्रभु सब जानते थे। तथापि उन्होंने जैसे ही हँसते-हँसते उस थालीको लेनेके लिए हाथ बढ़ाया, उसी समय एक विशालकाय पक्षी कहींसे उड़ता हुआ आया तथा उस थालीको अपने चोंचमें पकड़कर पुनः आकाशमें उड़ गया। ऊपर जाकर उसने वह थाली अपनी चोंचमें छोड़ दी, जिससे थालीमें रखी अपवित्र वस्तुएँ बौद्ध-आचार्यके शिष्योंके ऊपर ही गिर गयीं और थाली बौद्ध-आचार्यके सिरपर गिर पड़ी। तिरछी थाली लगनेसे उसका सिर कट गया तथा वहाँसे रक्तकी धारा बहने लगी, जिससे वह भूमिपर गिरकर बेहोश हो गया। यह देखकर उसके शिष्यलोग हा-हाकार करने लगे। सभीने आकर प्रभुके चरण पकड़ लिये तथा उनसे प्रार्थना करने लगे—"हे प्रभो! हमसे अपराध हो गया। हमने अहङ्कारवश आपको न पहचानकर एक साधारण संन्यासी समझा। आप तो दयालु हैं, अतः कृपाकर हमारे अपराधोंको क्षमाकर हमारे गुरुदेवको जीवित कर दीजिये।" यह सुनकर प्रभु बोले—"तुम सभी लोग मिलकर अपने गुरुके कानमें उच्च-स्वरसे कृष्णनामका कीर्त्तन करो। ऐसा करनेसे तुम्हारे गुरु जीवित हो जायेंगे।" अब सभी

लोग गुरुके कानके पास जोरसे कृष्णकीर्त्तन करने लगे। कुछ ही क्षण पश्चात् आचार्यको होश आ गया तथा वह भी खड़ा होकर नृत्य करते हुए कृष्णनाम कीर्त्तन करने लगा। यह देखकर वहाँपर उपस्थित हजारों लोगोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसी क्षण प्रभु वहाँसे अन्तर्धान हो गये। कोई भी उनका पुनः दर्शन न कर पाया।

## श्रीवैङ्कटभट्टपर कृपा

इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारतके विभिन्न तीर्थों, देवालयोंका दर्शन करते-करते श्रीरङ्गमके प्रसिद्ध श्रीरङ्गनाथजी मन्दिरमें उपस्थित हुए। श्रीरङ्गममें वैङ्कटभट्ट नामक एक श्री (रामानुज) सम्प्रदायके वैष्णव रहते थे। जब श्रीमन्महाप्रभु वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने प्रभुसे निवेदन किया—"प्रभो! अब चातुर्मास्य प्रारम्भ हो गया है। अतः आप कृपापूर्वक मेरा आतिथ्य स्वीकार करके श्रीरङ्गममें ही चातुर्मास्य व्यतीत कीजिये।" प्रभुने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस भट्ट परिवारमें वैङ्कटभट्ट, त्रिमल्लभट्ट और प्रबोधानन्द सरस्वती तीन भाई थे। वैङ्कटभट्टके पुत्रका नाम श्रीगोपाल भट्ट था।

श्रीवैङ्कटभट्ट श्रीलक्ष्मी-नारायणके उपासक थे। अतः वे श्रीनारायणको परतत्त्व मानते थे। एक दिन प्रभुने हँसते हुए उनसे पूछा—"भट्ट! तुम्हारी आराध्या श्रीलक्ष्मीजी परम पतिव्रता हैं तथा श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर निवास करती हैं और हमारे आराध्य श्रीकृष्ण गोप होनेके कारण गौएँ चराते हैं। अतः पतिव्रता श्रीलक्ष्मी ब्राह्मणी होनेपर भी श्रीकृष्णसे क्यों मिलना चाहती हैं? इसके लिए वे समस्त प्रकारके सुखभोगोंको त्यागकर बहुत समयसे तपस्या भी कर रही हैं।"

यह सुनकर भट्ट बोले—"प्रभो! श्रीकृष्ण एवं श्रीनारायण तो एक ही तत्त्व हैं। श्रीकृष्णमें केवल लीला-माधुरी अधिक है। अतः श्रीकृष्णको स्पर्श करनेसे उनका पतिव्रताधर्म नष्ट नहीं हो सकता।"

प्रभु बोले—"इसमें दोष नहीं है, यह तो ठीक है। परन्तु ऐसा सुना जाता है कि उन्हें रासमें प्रवेश नहीं मिला, जब कि श्रुतियोंने तपस्याके द्वारा रासमें प्रवेश पा लिया था, इसका क्या कारण है?"

भट्ट बोले—"प्रभो! मेरी बुद्धि अति तुच्छ है, अतः मैं इसका कारण समझ नहीं पा रहा हूँ। भगवान्‌की लीलाएँ तो करोड़ों

समुद्रोंके समान गम्भीर हैं। आप तो स्वयं कृष्ण ही हैं, अतः आप ही कृपापूर्वक इसका कारण बतलाइये।"

प्रभु बोले—"कृष्णकी एक विशेषता है कि वे अपनी माधुरीके द्वारा सबके चित्तको आकर्षित करते हैं। एकमात्र व्रजभावके द्वारा ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। व्रजवासी लोग कृष्णको भगवान् नहीं, बल्कि अपना पुत्र, सखा तथा प्राणवल्लभ मानते हैं। यदि कोई श्रीकृष्णको पाना चाहता है, तो उसे इन व्रजवासियोंका आनुगत्य स्वीकार करना ही पड़ेगा। श्रुतियोंने गोपियोंके आनुगत्यमें श्रीकृष्णका भजन किया, जिसके फलस्वरूप उनका व्रजमें गोपीरूपमें जन्म हुआ तथा वे रासमें प्रवेश कर सकीं। श्रीकृष्ण गोप हैं तथा वे गोपियोंके साथ ही रास करते हैं। परन्तु श्रीलक्ष्मीजी उसी ब्राह्मणी शरीरसे रासमें प्रवेश करना चाहती थीं, क्योंकि उन्हें ग्वालिनियों (गोपियों) का आनुगत्य स्वीकार नहीं था। यही कारण है कि उन्हें रासमें प्रवेश नहीं मिला।"

वैङ्कटभट्टका विचार था कि श्रीनारायण ही मूल भगवान् हैं तथा श्रीकृष्ण नारायणके अंश हैं, उनके इस विचारको दूर करनेके लिए ही प्रभुने हास-परिहासके माध्यमसे ये बातें कहीं। प्रभु बोले—"भट्ट! तुम विश्वास करो कि श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं तथा श्रीनारायण उनकी विलास-मूर्त्ति हैं। श्रीनारायणकी अपेक्षा श्रीकृष्णमें अधिक गुण हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण नारायणकी सेविका श्रीलक्ष्मीके मनको भी हर लेते हैं। परन्तु श्रीनारायण कदापि गोपियोंका मन हरण नहीं कर पाते।"

[इसका प्रमाण है—एकबार कृष्णकी इच्छा हुई कि गोपियोंके प्रेमकी परीक्षा ली जाय। इसके लिए वे राससे अन्तर्धान हो गये। जब गोपियाँ उन्हें खोज रही थीं, तो कृष्ण नारायणस्वरूप धारणकर उसी मार्गमें खड़े हो गये, जिस मार्गसे गोपियाँ जा रही थीं। जब गोपियाँ उनके निकट पहुँची, तो कहने लगीं—हे प्रभु नारायण! आप कृपा करके हमें हमारे प्राणनाथके विषयमें बता दीजिये। उस समय राधिकाजी कुछ पीछे थी। किन्तु जब वे नारायण-स्वरूपधारी कृष्णके निकट पहुँची, तो कृष्ण उस चतुर्भुज स्वरूपको नहीं रख सके। उनके दो हाथ उनके पेटमें प्रविष्ट हो गये। जिसके कारण उस

स्थानका नाम पड़ गया—पेंठा। आज भी व्रजमें वह स्थान पैंठाके नामसे प्रसिद्ध है।]

यह सुनकर भट्ट कहने लगे—"भगवान्‌की लीलाएँ तो अगाध हैं, उन्हें मेरे जैसा तुच्छ जीव कैसे समझ सकता है? आप तो स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं, अतः आपकी कृपासे ही मैं आज समझ पाया हूँ कि वास्तवमें श्रीकृष्ण ही समस्त अवतारोंके मूल हैं तथा भक्ति ही सर्वोपरि है।" ऐसा कहकर वैङ्कटभट्टने आनन्दसे रोते हुए प्रभुके चरणकमलोंको पकड़ लिया तथा प्रभुने भी उन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया। उनका सारा परिवार श्रीकृष्ण-भक्त बन गया। इस प्रकार चार मास वहीं बिताकर प्रभु आगे चल दिये।

## गोदावरीके तटपर राय-रामानन्दसे मिलन

इस प्रकार भट्ट परिवारपर कृपाकर प्रभु गोदावरीके तटपर पहुँचे। गोदावरीका दर्शनकर उन्हें यमुनाका स्मरण हो आया। उन्होंने आनन्दपूर्वक उसमें स्नान किया तथा घाटसे कुछ दूरीपर बैठकर कृष्णनाम-कीर्त्तन करने लगे। उसी समय श्रीराय रामानन्दजी राजवेशमें बहुत-से ब्राह्मणोंके साथ गोदावरीमें स्नान करनेके लिए वहाँपर उपस्थित हुए। वे कृष्णके ऐकान्तिक भक्त थे तथा कृष्णलीलामें श्रीराधाजीकी प्रिय सखी श्रीविशाखाजी थे। प्रभुका दर्शनकर वे मुग्ध हो गये और श्रीमन्महाप्रभु भी उन्हें देखकर पहचान गये कि ये ही राय-रामानन्द हैं। अतः वे अधीर होकर उन्हें आलिङ्गन करना चाहते थे, परन्तु किसी प्रकारसे स्वयंको रोके रहे। उसी समय राय-रामानन्दजी स्वयं प्रभुके पास आये। उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। प्रभुने आनन्दसे पुलकित होकर उन्हें आलिङ्गन किया। उस समय वहाँपर विजातीय लोग होनेके कारण उन दोनोंमें कुछ विशेष वार्त्तालाप नहीं हो पाया। अतः प्रभु बोले—"रामानन्दजी! आप सन्ध्याके समय मेरे पास आना। उस समय हम कुछ कृष्णकथाकी चर्चा करेंगे।"

श्रीराय-रामानन्द प्रभुके आदेशको शिरोधार्यकर उस समय ब्राह्मणोंके साथ वापस चले गये। पुनः सन्ध्याके समय जब वे एक साधारण वेशमें प्रभुसे मिले तो प्रभु बहुत प्रसन्न हो गये। श्रीमन्महाप्रभुने पूछा—"रामानन्द! आप साध्य तथा साधनतत्त्व पर कुछ प्रकाश

डालिये।" राय-रामानन्दने उत्तर दिया—"वर्णाश्रमधर्मका पालन ही साधन है और भक्ति ही साध्य है।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—ये चार वर्ण हैं। शास्त्रोंमें सभी वर्णोंके लिए उनके स्वभावके अनुसार अलग-अलग कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं। जो विद्याध्ययन एवं अध्यापनमें रुचि रखते हैं और भक्तिमान हैं, वे ब्राह्मण हैं। वीरता एवं राज्यशासनमें ही जिनकी रुचि है, वे क्षत्रिय हैं। कृषि, पशुपालन और व्यवसाय इत्यादिमें जिनकी स्वाभाविक रुचि है, वे वैश्य कहलाते हैं। इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना ही जिनका स्वभाव है, वे शूद्र कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास—ये चार आश्रम हैं। अपने-अपने वर्ण एवं आश्रमोंके लिए शास्त्रोंमें निर्धारित कर्त्तव्योंका पालन करनेसे भगवान् सन्तुष्ट होते हैं।

यह सुनकर प्रभु बोले—"यह बाह्य विचार है।" अर्थात् वर्णाश्रमधर्मका अच्छी प्रकार पालन करनेपर जागतिक सुख, स्वर्गसुख अथवा मुक्तिसुख तो प्राप्त हो सकता है, परन्तु भगवान्का धाम प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसका फल वैकुण्ठसे बाहरी होनेके कारण प्रभुने इसे बाह्य कहा तथा राय-रामानन्दसे कहा—"इससे आगे कहो।" यह सुनकर राय-रामानन्दने जब क्रमशः कर्मार्पण, कर्मत्याग, ज्ञानमिश्रा भक्तिका वर्णन करते हुए ज्ञानशून्या भक्तिके विषयमें कहा तब प्रभु बोले—"रामानन्द! यह ठीक है। परन्तु इससे भी उत्तम कुछ है तो कहिये।"

तदुपरान्त राय-रामानन्दने क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य, तथा वात्सल्य प्रेमका वर्णन करते हुए अन्तमें मधुरभाव (गोपीभाव) को ही साध्य-शिरोमणि बताया। पूर्ण रूपसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति तो केवल मधुरभावसे ही हो सकती है, क्योंकि श्रीकृष्ण मधुरभावकी आश्रय गोपियोंके वशीभूत रहते हैं। यह सुनकर प्रभु बोले—"रामानन्द! वास्तवमें यही साध्यतत्त्वकी चरम सीमा है। परन्तु यदि इससे आगे भी कुछ है, तो कृपापूर्वक कहिये।"

राय-रामानन्द बोले—"इस गोपीभाव (अर्थात् जिस भावसे गोपियाँ कृष्णकी सेवा करती हैं) में भी श्रीराधाजीका प्रेम सर्वश्रेष्ठ है, जिनके लिए श्रीकृष्ण अन्यान्य गोपियोंकी भी उपेक्षा कर देते हैं।

जैसे रासलीलाके समय श्रीराधाजीके मानिनी होकर रास छोड़कर चले जानेपर श्रीकृष्ण व्याकुल हो गये। उनका मन रासलीलासे उचट गया और वे भी रास छोड़कर श्रीराधाजीकी खोजमें निकल पड़े।"

यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु प्रसन्न होकर कहने लगे—"रामानन्दजी! जिस उद्देश्यसे मैं आपके पास आया था, वह पूरा हो गया। अब मुझे पूर्ण रूपसे साध्य-साधन तत्त्वका ज्ञान हो गया। यदि इससे भी आगे कुछ है तो कहिये, मेरी सुननेकी बहुत इच्छा हो रही है।"

इसपर राय-रामानन्दने क्रमशः कृष्णतत्त्व, राधातत्त्व, रसतत्त्व एवं प्रेमतत्त्वका वर्णन किया। इसे सुनकर प्रभु बोले—"रामानन्दजी! आपकी कृपासे मुझे साध्यवस्तुका तो अच्छी प्रकारसे ज्ञान हो गया। अब कृपापूर्वक साधन अर्थात् वह उपाय बताइये जिसकी सहायतासे इस साध्यवस्तुको पाया जा सके।"

राय-रामानन्द बोले—"श्रीराधाकृष्णकी मधुररसकी लीलाएँ बहुत ही गोपनीय हैं। दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भावोंके द्वारा भी इनमें प्रवेश सम्भव नहीं है। इन लीलाओंमें तो एकमात्र सखियोंका ही अधिकार है। अतः सखियोंके आनुगत्यके बिना इन गूढ़तम लीलाओंमें किसीका भी प्रवेश सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि स्वयं श्रीलक्ष्मीजीको भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका, क्योंकि उन्होंने गोपियोंका आनुगत्य नहीं किया।"

यह सुनकर प्रभुने उनका आलिङ्गन कर लिया। राय-रामानन्द बोले—"प्रभो! मेरे हृदयमें एक संशय है, आप कृपापूर्वक उसे दूर करें। पहले मैंने आपको संन्यासीके रूपमें दर्शन किया, परन्तु अब आपको श्यामवर्णवाले गोपके रूपमें देख रहा हूँ। मुझे आपके सामने एक सोनेकी मूर्त्ति दिखायी दे रही है, जिसकी गौरकान्तिसे आपका श्यामवर्ण ढका हुआ है तथा आपके हाथोंमें वंशी भी देख रहा हूँ। अतः प्रभो! यह सब क्या है, आप कृपापूर्वक मुझे बताइये।"

यह सुनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु कहने लगे—"श्रीकृष्णके प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम है तथा उस प्रेमका स्वभाव ऐसा ही है। महाभागवत जड़ अथवा चेतन सभी वस्तुओंमें श्रीकृष्णका ही दर्शन करते हैं। आपका श्रीराधाकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेम होनेके कारण मुझमें भी आपको श्रीराधाकृष्णके दर्शन हो रहे हैं।"

रामानन्द बोले—"प्रभो! स्वयंको मुझसे छिपानेकी चेष्टा न करें। मैं समझ गया हूँ कि श्रीमती राधिकाजीके भाव एवं उनकी अङ्गकान्ति लेकर आप प्रेमरसका आस्वादन करनेके लिए ही इस स्वरूपमें अवतरित हुए हैं। जब मेरा उद्धार करनेके लिए आप यहाँ स्वयं आये हैं, तो अब छल करनेकी क्या आवश्यकता है?"

यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभुने हँसते हुए उन्हें अपना रसराज श्रीकृष्ण एवं महाभावस्वरूपा श्रीराधाजीके मिलित स्वरूपका दर्शन कराया। दर्शन करते ही रामानन्दराय आनन्दसे मूर्च्छित होकर भूमिनपर गिर पड़े। प्रभुने उन्हें स्पर्शकर उनकी मूर्च्छाको दूर किया। चेतन होते ही जब उन्होंने पुनः श्रीमन्महाप्रभुको गौरवर्णके संन्यासी वेशमें दर्शन किया, तो विस्मित हो गये। प्रभु उन्हें आलिङ्गन करते हुए बोले—"तुम्हारे अतिरिक्त मेरे इस स्वरूपका दर्शन आज तक किसीने नहीं किया। तुम जो मुझे पृथक् एक 'गौरपुरुष' के रूपमें देख रहे हो, वास्तवमें 'मैं' वह नहीं हूँ अर्थात् यह गौरवर्ण मेरा नहीं है। मैं तो नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही हूँ तथा मेरा रङ्ग साँवला है, परन्तु श्रीमती राधिकाजीके अङ्गोंके स्पर्शसे मेरा यह गौरवर्ण नित्य है। श्रीमती राधिकाके भाव एवं उनकी अङ्गकान्तिको अङ्गीकारकर मैं स्वयं कृष्ण होते हुए भी अपने ही माधुर्यका आस्वादन कर रहा हूँ। मैंने तुम्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया, क्योंकि तुम मुझे बहुत प्रिय हो, परन्तु सावधान! इस विषयमें तुम किसीसे कुछ भी मत कहना तथा अतिशीघ्र संसार छोड़कर नीलाचल चले आना। वहाँ हम दोनों श्रीकृष्ण-कथाओंकी चर्चामें निमग्न रहेंगे।"

## राजा प्रतापरुद्रके पुत्रको दर्शन देना

जब प्रभु दक्षिण भारतसे वापस लौटे तो नीलाचलवासी भक्तोंके आनन्दकी सीमा न रही। सभी लोग श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनोंके लिए आने लगे। वहाँके राजा प्रतापरुद्र परम भगवद्भक्त तथा महाप्रभुके प्रति विशेष अनुरक्त थे। वे प्रभुका दर्शन करना चाहते थे। परन्तु प्रभुका आदेश था कि वे राजदर्शन (विषयी लोगोंका दर्शन) नहीं करेंगे, क्योंकि राजदर्शन संन्यासीके लिए निषेध है। जब बहुत चेष्टा करनेपर भी राजाको प्रभुका दर्शन नहीं मिला तो एक दिन वे दुःखी

होकर सार्वभौम भट्टाचार्यसे बोले—"प्रभुके दर्शनमें मेरा राजवेश ही बाधक बन रहा है। अतः मैं राजवेश त्यागकर संन्यासवेश धारण कर लूँगा।"

यह सुनकर सार्वभौमका हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने जाकर प्रभुको राजाका विचार सुनाया तो प्रभु सन्तुष्ट होकर बोले—"सार्वभौम! मैं उसे तो नहीं, परन्तु उसके पुत्रको अवश्य दर्शन दूँगा।" यह समाचार जब राजाको मिला तो उन्होंने अति प्रसन्न होकर अपने छोटे-से पुत्रको कृष्णके वेशमें सजाया। राजकुमार था भी साँवला तथा उसके नेत्र भी बड़े-बड़े और आकर्षक थे। जब भक्तलोग उसे प्रभुके समीप ले गये, तो प्रभुने प्रेमाविष्ट होकर उसे गलेसे लगा लिया। प्रभुका स्पर्श पाते ही वह भी प्रेममें मत्त होकर रोने लगा तथा प्रभुके श्रीचरणोंमें लोटने लगा। जब भक्तलोग राजकुमारको वापस राजाके पास ले गये, तो अपने पुत्रकी ऐसी अद्भुत अवस्था देखकर वे बहुत प्रसन्न हो गये। जैसे ही उन्होंने उसका आलिङ्गन किया, तो उन्हें ऐसे आनन्दकी अनुभूति हुई, जैसे वे प्रभुका ही आलिङ्गन कर रहे हों।

## गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन

श्रीमन्महाप्रभुके दक्षिण भारतकी यात्रा करके नीलाचल लौटनेके कुछ समय पश्चात् भगवान् श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्राका समय उपस्थित हुआ। रथयात्रा एवं श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनोंके उद्देश्यसे बङ्गालसे भी श्रीअद्वैताचार्य, श्रीशिवानन्दसेन इत्यादि हजारों भक्तलोग जगन्नाथपुरीमें उपस्थित हुए। रथयात्रासे एक दिन पूर्व गुण्डिचा-मन्दिर (वह स्थान जहाँपर रथपर सवार होकर श्रीजगन्नाथदेव जाते हैं और सात दिन तक वहींपर निवास करते है एवं वहीं उनकी सेवा की जाती है) मार्जन किया जाता है। उससे एकदिन पूर्व श्रीमन्महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य एवं काशीमिश्रसे हँसते-हँसते बोले—"भट्टाचार्यजी! इस बार गुण्डिचा-मन्दिर मार्जन-सेवा मैं स्वयं करना चाहता हूँ।"

यह सुनकर सार्वभौम भट्टचार्य बोले—"प्रभो! हम तो आपके सेवक हैं। यह सेवा तो हमारी है। परन्तु आपकी इच्छाके विरुद्ध

हम कैसे जा सकते हैं? इसके अतिरिक्त राजा प्रतापरुद्रका भी आदेश है कि जैसे आपकी इच्छा हो, वैसा ही किया जाय।"

तब प्रभुके निर्देशानुसार एक सौ नये मिट्टीके घड़े और एक सौ झाड़ू मँगवाये गये। दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोंको साथ लेकर गुण्डिचा-मन्दिरमें पहुँच गये। सर्वप्रथम उन्होंने सभीको अपने हाथोंसे चन्दन लगाया, तत्पश्चात् सभीको एक-एक झाड़ू पकड़ा दिया। सबसे पहले सम्पूर्ण मन्दिरको झाड़ूसे साफ किया गया। उस समय सभीके मुखसे कृष्णनाम निकल रहा था। श्रीमन्महाप्रभुकी तो अवस्था ही अद्भुत हो रही थी, वे आनन्दसे मन्दिरमें झाड़ू लगा रहे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। जब झाड़ूओंके द्वारा घास-फूसके तिनके तथा कङ्कड़ आदि साफ हो गये, तब श्रीमन्महाप्रभुने आदेश दिया कि अब जलसे मन्दिरको धोओ, जिससे भूमि, दीवारों, छतोंपर चिपकी हुई धूल बह जाय। सबसे पहले महाप्रभुने स्वयं अपने हाथोंमें एक घड़ा जल लेकर सिंहासनको धोया, फिर सभी भक्तलोग मन्दिरको धोनेमें लग गये। इस प्रकार सम्पूर्ण मन्दिरको धोकर साफ-सुथरा कर दिया गया, परन्तु प्रभुका मन तब भी नहीं भरा। अतः अन्तमें वे अपने उत्तरीय (दुपट्टे) से ही मन्दिरको रगड़-रगड़कर साफ करने लगे। इस प्रकार मन्दिर साफ-सुथरा एवं निर्मल हो गया। उस समय ऐसा लगने लगा जैसे साफ-सुथरे एवं निर्मल मन्दिरके रूपमें प्रभुने अपने हृदयको ही बाहर रख दिया हो। इस लीलाके द्वारा महाप्रभुने शिक्षा दी कि जब तक हृदयरूपी मन्दिर साफ-सुथरा अर्थात् नाना प्रकारकी सांसारिक कामनाओं एवं अनर्थोंसे मुक्त नहीं होगा, तब तक उसमें भगवान्‌को विराजमान नहीं कराया जा सकता।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभपादने श्रीचैतन्यचरितामृतके इस प्रसङ्गपर अपने अनुभाष्यमें गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जनके रहस्यको प्रकाशित करते हुए कहा है—"कृष्णकी सेवा प्राप्तिके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकारकी कामनाएँ कँटीले घासके तिनकोंकी ही भाँति हैं, जो शुद्धजीवकी सुकोमला हृद्‌वृत्ति—शुद्धभक्तिको विद्ध कर देते हैं। कर्म अर्थात् यज्ञ, दान, पुण्य, व्रत आदि धूलिके समान हैं, जो स्वच्छ

एवं निर्मल हृदय-दर्पणको ढक देते हैं। निर्विशेष ब्रह्मज्ञान एवं योग आदिकी चेष्टा कङ्कड़ आदिके समान हैं, जिसके द्वारा भगवान्‌की सेवा तो दूरकी बात है, इसके विपरीत भगवान्‌के शरीरपर आघात करनेकी चेष्टा ही होती है। यद्यपि निर्विशेष ब्रह्मज्ञानी या मायावादी लोग मुमुक्षु अवस्थामें अर्थात् साधन अवस्थामें भगवान्‌का नाम आदि गौण रूपमें ग्रहण करते हैं, परन्तु मुक्त अवस्थामें वे लोग भगवान्‌का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। वे भगवान्‌के नाम आदिको अनित्य साधनमात्र मानते हैं। इसीलिए श्रीगौरसुन्दरने तृण, धूलि, कङ्कड़ आदिको अपने दुपट्टेमें भरकर मन्दिरकी सीमाके बाहर फैंक दिया, जिससे कि ये वस्तुएँ पुनः मन्दिरमें प्रविष्ट न हो जायँ। तात्पर्य यह है कि जब तक हृदयक्षेत्रमें ये सब प्रतिकूलताएँ विद्यमान रहती है, तब तक हृदय परमसेव्य भगवान्‌का आसन नहीं बन सकता।"

## रथके आगे महाप्रभुका नृत्य तथा प्रतापरुद्रपर कृपा

रथयात्राके दिन प्रातःकालीन कृत्योंसे निवृत्त होकर श्रीमन्महाप्रभु पाण्डुविजय अर्थात् श्रीजगन्नाथदेव, बलदेव प्रभु एवं सुभद्रादेवीका मन्दिरसे चलकर रथमें आरोहणका दर्शन करनेके लिए गये। श्रीजगन्नाथदेवके दयितापति-सेवक बड़े-बड़े हाथियोंके समान बलशाली थे जो उन्हें धीरे-धीरे रथकी ओर ला रहे थे। कुछने उनके कन्धोंको पकड़ रखा था, कुछने उनकी कमरको। उनकी कमरमें एक बहुत मोटी रस्सी बाँधी गयी थी, जिसके दोनों कोनोंको पकड़कर कुछ दयितापति उन्हें उठा-उठाकर रथकी ओर ला रहे थे। श्रीजगन्नाथदेव तो स्वतन्त्र हैं, उनकी इच्छाके बिना उन्हें कौन हिला सकता है? जब उनकी इच्छा होती, तो वे सहज ही चल पड़ते, परन्तु जब उनकी अपने भक्तोंसे कौतुक एवं हास-परिहासकी इच्छा होती तो, वे स्थिर हो जाते। उस समय लाख चेष्टा करनेपर भी कोई उन्हें हिला नहीं पाता। इस प्रकार लीलामय प्रभु आनन्दसे झूमते-झूमते रथमें सवार हो गये।

उसी समय राजा प्रतापरुद्र अपने हाथोंमें सोनेका झाड़ू लेकर वहाँपर आये तथा रथके आगे आनन्दपूर्वक झाड़ू लगाने लगे। उन्हें ऐसी सेवा करते देख श्रीमन्महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए। महाप्रभुने अपने

सभी कीर्त्तनीयाओंको अपने हाथोंसे माला एवं चन्दन अर्पण किया। तत्पश्चात् कीर्त्तनके सात दल बनाये गये। श्रीजगन्नाथके आगे चार दल नृत्य एवं कीर्त्तन कर रहे थे। उनके दोनों ओर दो तथा पीछे एक दल कीर्त्तन कर रहा था। इस प्रकार उस समय चारों ओर कीर्त्तनकी ही ध्वनि गूँजने लगी। प्रभु सातों दलोंमें ही दोनों भुजाएँ उठाकर नृत्य करते हुए 'हरि-हरि' एवं 'जय जगन्नाथ! जय जगन्नाथ!' कहते हुए विचरण कर रहे थे। अब रथ धीरे-धीरे चलने लगा। उसी समय प्रभुने अपना ऐश्वर्य प्रकट किया। वे एक साथ सातों दलोंमें नृत्य करने लगे। परन्तु इसे एकमात्र सौभाग्यवान प्रतापरुद्रने ही दर्शन किया, क्योंकि उनकी सेवासे प्रभुने प्रसन्न होकर उनपर ही यह कृपा की। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूपसे महाप्रभु उनके प्रति उदासीन होनेपर भी हृदयसे उन्हें बहुत प्रीति करते थे। इस प्रकार महाप्रभु कीर्त्तन करते-करते आनन्दपूर्वक नृत्य कर रहे थे। उस समय उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा गङ्गा-यमुनाके प्रवाहकी भाँति प्रवाहित हो रही थी।

अब श्रीजगन्नाथदेवका रथ धीरे-धीरे बलगण्डि नामक स्थानपर पहुँचा। वहाँपर श्रीजगन्नाथदेवको भोग लगानेका नियम है। नृत्य करते-करते महाप्रभु भी कुछ क्लान्त हो गये थे। उनका सारा शरीर पसीनेसे लथ-पथ हो गया था। अतः वे निकट ही एक बगीचेमें चले गये और एक वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे। उस समय महाप्रभु भावाविष्ट थे तथा नेत्र बन्द करके लेटे हुए थे। उसी समय सार्वभौमके आदेशानुसार राजा प्रतापरुद्र राजवेश त्यागकर एक सामान्य वैष्णववेश धारणकर डरते हुए धीरे-धीरे महाप्रभुकी चरणसेवा करने लगे। श्रीमन्महाप्रभुकी चरणसेवा करते समय सार्वभौमके निर्देशानुसार उन्होंने गोपीगीतका एक श्लोक मधुर-कण्ठसे गाना प्रारम्भ कर दिया। श्लोक सुनते ही महाप्रभुने नेत्र बन्द किये हुए ही आनन्दपूर्वक उन्हें गलेसे लगा लिया तथा 'और बोलो, और बोलो' कहने लगे। कुछ क्षण पश्चात् महाप्रभुने पूछा—"तुम कौन हो, जिसने मुझे आनन्दसागरमें डुबो दिया?"

राजा हाथ जोड़कर बोले—"मैं आपके ही सेवकोंका एक तुच्छ सेवक हूँ।" यह सुनकर प्रभुने उन्हें अपना ऐश्वर्य दिखलाया तथा उन्हें इसे अन्य किसीसे भी कहनेके लिए निषेध किया।

उसी समय महाप्रसाद आ गया। भक्तवत्सल भगवान् अपने प्रिय भक्तोंको बैठाकर स्वयं उन्हें परिवेषण करने लगे। परन्तु श्रीस्वरूप दामोदरने पहले महाप्रभुको प्रसाद पानेके लिए बैठा दिया। इस प्रकार सर्वप्रथम महाप्रभुने और तत्पश्चात् भक्तोंने प्रसाद पाया। जब रथके चलनेका समय हुआ तो बहुत प्रयास करनेपर भी रथ टससे मस नहीं हुआ। अतः रथको खींचनेके लिए बहुत-से हाथियोंको लगाया गया, परन्तु वे भी रथको खींचनेमें असमर्थ हो गये। यह बात जब महाप्रभुके कानोंमें पहुँची, तो वे अपने भक्तोंके साथ रथके निकट पहुँच गये। उन्होंने सभी हाथियोंको हटवा दिया तथा रस्सी अपने भक्तोंके हाथोंमें थमा दी और स्वयं रथके पीछे जाकर जैसे ही उन्होंने अपने सिरसे रथको ढकेला तो रथ 'हड़-हड़' करता हुआ चल पड़ा। भक्तलोग तो मात्र रस्सी पकड़े हुए थे, परन्तु रथ स्वयं ही चल रहा था। कुछ ही क्षणोंमें रथ गुण्डिचा-मन्दिर तक पहुँच गया। महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ आङ्गनमें कीर्त्तन एवं नृत्य करने लगे। सन्ध्याके समय सन्ध्या-आरतीका दर्शनकर प्रभु 'आइटोटा' आ गये। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभुकी उपस्थितिमें कीर्त्तन एवं नृत्योत्सवके साथ नौ दिनका रथयात्रा उत्सव सम्पन्न हुआ।

## अमोघका उद्धार

रथयात्राके कुछ दिन बाद एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमन्महाप्रभुको अपने घरमें प्रसाद पानेके लिए आमन्त्रित किया। जब महाप्रभु उनके घरमें उपस्थित हुए और प्रसाद पानेके लिए बैठ गये तो भट्टाचार्यने उनके आगे अन्न एवं अनेक व्यञ्जनोंका ढेर लगा दिया। यह देखकर महाप्रभु बोले—"भट्टाचार्यजी! यह आप क्या कर रहे हैं? क्या मैं अकेला इतना खा सकता हूँ?"

यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य हँसते-हँसते कहने लगे—"प्रभो! जगन्नाथ मन्दिरमें तो आप ५२ बार सैकड़ों मन अन्न खा जाते हैं तथा द्वारकामें १६,१०८ रानियोंके घरोंमें खाते हैं। इसके अतिरिक्त व्रजमें अन्नकूटके समय आपने समस्त व्रजवासियोंके द्वारा अर्पित किये गये हजारों मन खाद्य-सामग्रियोंको एक क्षणमें ही खा लिया। फिर उसकी तुलनामें तो यह कुछ भी नहीं है। अतः आप मुझे

ठगनेकी चेष्टा न करें। कृपापूर्वक मेरी इस तुच्छ सेवाको ग्रहण करें।" यह सुनकर महाप्रभु प्रसन्न होकर प्रसाद ग्रहण करनेके लिए बैठ गये। अभी उन्होंने भोजन करना आरम्भ ही किया था कि उसी समय सार्वभौम भट्टाचार्यका दामाद अमोघ वहाँ आ पहुँचा। वह बहुत बड़ा पाषण्डी और साधु-सन्तोंका निन्दुक था। उस समय सार्वभौम भाटाचार्य हाथमें लाठी लेकर द्वारपर बैठे थे। उन्हें सन्देह था कि कहीं अमोघने महाप्रभुको प्रसाद पाते हुए देख लिया, तो वह अवश्य ही निन्दा करेगा, और वही हुआ। अमोघने दरवाजेसे झाँककर महाप्रभुको प्रसाद पाते हुए देख लिया तथा कटाक्ष करते हुए बोला—"अहो! एक संन्यासी दस-बीस व्यक्तियोंका भोजन अकेला ही खा जाता है। यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है।" यह सुनकर जैसे ही सार्वभौम भट्टाचार्य उसे मारनेके लिए उसकी ओर लपके, वह जल्दी-से वहाँसे भाग गया। अब भट्टाचार्य क्रोधित होकर उसे अभिशाप देने लगे। सार्वभौमकी स्त्री भी महाप्रभुकी परम भक्त थी। वह रोते-रोते दोनों हाथोंसे अपनी छाती पीटते हुए बार-बार कहने लगी—"मेरी लड़की षाठी विधवा हो जाये, तो अच्छा है, मेरी लड़की षाठी विधवा हो जाये तो अच्छा है।"

उन दोनोंको इस प्रकार दुःखित और विलाप करते हुए देखकर महाप्रभुका हृदय द्रवित हो गया। उन्हें प्रसन्न करनेके लिए प्रभुने उनकी इच्छानुसार भरपेट प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् भट्टाचार्यने उन्हें आचमन कराया और महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर कहने लगे—"प्रभो! आप मेरा अपराध क्षमा करें। मैंने आपको अपने घरमें बुलवाकर आपका घोर अपमान करवाया।"

श्रीमन्महाप्रभु कहने लगे—"भट्टाचार्यजी! अमोघने मेरी निन्दा नहीं की, बल्कि उसने तो सत्य ही कहा। इसमें आपका क्या अपराध हुआ?" ऐसा कहकर प्रभु अपने निवासस्थानकी ओर चल पड़े। सार्वभौम भट्टाचार्य प्रभुको छोड़नेके लिए उनके साथ गये। प्रभुके निवासस्थानपर पहुँचकर वे महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर रोने लगे। प्रभुने उन्हें सान्त्वना प्रदानकर वापस भेज दिया। अपने घर आकर वे पत्नीसे कहने लगे—"आज मैंने जिसके मुँहसे अपने प्राणनाथकी निन्दा सुनी, यदि मैं उसकी हत्या कर दूँ या स्वयं आत्महत्या कर

लूँ, तभी मेरे अपराधका प्रायश्चित्त होगा। परन्तु मैं यह दोनों ही कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि अमोघ ब्राह्मण है तथा मैं भी ब्राह्मण हूँ। अतः मैं आजसे उस दुष्टका परित्याग कर रहा हूँ।" ऐसा कहकर वे पुत्री षाठीसे बोले—"बेटी! तेरा पति पतित हो चुका है। अतः तू उसका परित्याग कर दे, क्योंकि अभक्त एवं नास्तिक पतिको त्याग कर देना ही उचित है।" उस रात अमोघ भयके कारण घर नहीं आया। प्रातःकाल जब वह घर आया तो उसे हैजा हो गया। यह सुनकर भट्टाचार्य कहने लगे—"अच्छा हुआ, जो काम मैं स्वयं नहीं कर पा रहा था, वह स्वयं ही हो रहा है। यदि यह मर ही जाये तो अच्छा है। भगवान्‌के चरणोंमें अपराधकर कोई कुशलपूर्वक कैसे रह सकता है?"

दोपहरके समय जब महाप्रभुको यह समाचार मिला तो वे तुरन्त वहाँपर आ गये और अमोघकी छातीपर हाथ रखकर कहने लगे—"ब्राह्मण तो स्वभावसे ही सरल और निर्मल होता है। परन्तु तुमने अपने हृदयमें मात्सर्य (ईर्ष्या) रूपी चण्डालिनीको क्यों बैठा रखा है? अमोघ! उठो, कृष्णनाम-कीर्त्तन करो। अतिशीघ्र ही भगवान् तुमपर कृपा करेंगे।"

उसी क्षण अमोघ 'कृष्ण-कृष्ण' कहता हुआ उठकर खड़ा हो गया तथा प्रेममें उन्मत्त होकर नृत्य करने लगा। कुछ क्षण पश्चात् वह श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंको पकड़कर निवेदन करने लगा—"हे दयामय प्रभो! आप मुझे क्षमा करें। मैंने अपने इस घृणित मुखसे आपकी निन्दा की।" ऐसा कहकर वह अपने गालों तथा मुखको अपने हाथोंसे पीटने लगा। उसकी ऐसी दशा देखकर प्रभुने उसे गलेसे लगा लिया और सार्वभौमसे कहने लगे—"सार्वभौमजी यह अमोघ तो बालक है, अतः आप इसे क्षमा कर दीजिये।" यह सुनकर सार्वभौम प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े।

## वृन्दावन-यात्रा एवं झाड़खण्डमें पशु-पक्षियोंको प्रेमदान

अब श्रीमन्महाप्रभुकी वृन्दावन जानेकी इच्छा हुई। उन्होंने यह बात सार्वभौम तथा अन्यान्य भक्तोंसे कही और साथ ही यह भी कहा कि वे वृन्दावन अकेले ही जायेंगे। यह सुनकर श्रीमन् नित्यानन्द

प्रभु, श्रीसार्वभौम इत्यादि भक्तोंने प्रार्थना की—"प्रभो! आप कृपापूर्वक बलभद्र भट्टाचार्य तथा उनके एक सेवकको अपने साथ लेकर जाइये। मार्गमें ये दोनों आपकी सेवा करेंगे। भक्तोंकी प्रार्थनानुसार महाप्रभु उन दोनोंको साथ लेकर वृन्दावनकी ओर चल पड़े। उन्होंने राजमार्ग छोड़ दिया तथा जङ्गलका रास्ता पकड़ लिया। जङ्गल बहुत ही घना और गम्भीर था। प्रभु प्रेममें उन्मत्त होकर कीर्त्तन करते हुए चले जा रहे थे। मार्गमें प्रभुका दर्शनकर बाघ, भालू तथा हाथी इत्यादि हिंसक प्राणी भी रास्ता छोड़ देते थे। महाप्रभु तो प्रेममें आविष्ट होकर चले जा रहे थे, परन्तु उनके दोनों साथियोंकी अवस्था दयनीय हो रही थी। वे बहुत भयभीत हो रहे थे। एक स्थानपर बीच मार्गमें एक भयङ्कर बाघ सो रहा था। प्रेममें उन्मत्त महाप्रभुका चरण उसके शरीरपर पड़ गया। प्रभु बोले—"कृष्ण बोलो! कृष्ण बोलो!" बाघ तुरन्त उठ खड़ा हुआ तथा 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर नाचने लगा।

एक अन्य स्थानपर जब महाप्रभु नदीमें स्नान कर रहे थे, उसी समय मत्त हाथियोंका एक दल नदीमें जल पीनेके लिए आया। प्रभुने 'कृष्ण कहो' कहते हुए उनपर जलके छींटे फेंक दिये। वे जलके छींटे जिन-जिनके शरीरपर पड़े, वे सभी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने और कीर्त्तन करने लगे। उनमेंसे कुछ तो भूमिमें गिरकर चीत्कार करने (चिघाड़ने) लगे। यह अलौकिक दृश्य देखकर भट्टाचार्य और उनके सेवकके आश्चर्यकी सीमा न रही।

श्रीमन्महाप्रभु मार्गमें मधुर-कण्ठसे कीर्त्तन करते हुए जा रहे थे, उनकी मधुर ध्वनि सुनकर जङ्गलकी हिरणियाँ भी बेसुध होकर उन्हें घेरकर उनके साथ चलने लगीं। यह देखकर प्रभु उनके शरीरपर अपना अति कोमल हस्तकमल फिराते हुए उनपर कृपा करने लगे। उसी समय कहींसे पाँच-सात शेर भी वहाँपर आ पहुँचे। वे भी हिरणियोंके साथ मिलकर प्रभुके साथ-साथ चलने लगे। इससे प्रभुको वृन्दावनका स्मरण हो आया। जैसे ही प्रभुने 'कृष्ण-कृष्ण कहो' कहा, वैसे ही वे हिरणियाँ एवं शेर मिलकर आनन्दसे रोते-रोते 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए नाचने लगे। शेर तथा हिरणियाँ एक-दूसरेको आलिङ्गनकर एक-दूसरेका मुख चूमने लगे। यह देखकर प्रभु हँसते हुए उन्हें छोड़कर आगे चल पड़े। महाप्रभुका दर्शनकर मोर, तोते,

कोयल आदि पक्षी भी 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए तथा नृत्य करते हुए प्रभुके साथ चल पड़े। जब प्रभु उन्मत्त होकर 'हरि-हरि' कहते तो जङ्गलके वृक्ष एवं लताएँ भी प्रफुल्लित हो जाते थे। इस प्रकार झाड़खण्डमें स्थावर (वृक्ष आदि) एवं जङ्गम (पशु-पक्षी) सभीको प्रेमदानकर प्रभुने उन्मत्त कर दिया।

## वाराणसीमें मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द द्वारा प्रभुकी निन्दा

मार्गमें पड़नेवाले गाँवों एवं नगरोंको कृष्णप्रेमकी बाढ़में डुबाते हुए श्रीमन्महाप्रभु मायावादियोंकी नगरी वाराणसी पहुँचे। महाप्रभु जब मणिकर्णिका घाटमें स्नान कर रहे थे, उस समय तपन मिश्रने वहाँपर प्रभुका दर्शन किया। पहले गृहस्थलीलाके समय जब प्रभु बंगदेशकी यात्रापर गये थे, वहाँपर उन्होंने तपन मिश्रपर कृपा की थी तथा

उसे काशीमें रहनेका आदेश दिया था तथा यह भी कहा था कि मैं तुमसे वहीं मिलूँगा। अतः आज तपन मिश्रने प्रभुको पहचान लिया। उन्होंने पहले ही सुन लिया था कि प्रभुने संन्यास वेश धारण कर लिया है। अतः प्रभुको संन्यासीवेशमें देखकर उन्हें अपार आनन्द हुआ। वे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर रोने लगे। प्रभुने उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया। तत्पश्चात् वे प्रभुको अपने घर ले आये तथा उनका अच्छी प्रकारसे आदर-सत्कार किया।

उसी काशी नगरीमें महाप्रभुके एक और प्रेमीभक्त निवास करते थे। उनका नाम चन्द्रशेखर था। वे वैद्यजातिके थे तथा तपन मिश्रके मित्र थे। उन्होंने जब सुना कि प्रभु काशीमें तपन मिश्रके घर आये हैं, तो वे भी दौड़े-दौड़े प्रभुका दर्शन करनेके लिए तपन मिश्रके घरपर आ पहँचे। श्रीमन्महाप्रभुका दर्शन करते ही वे आनन्दसे रोते-रोते प्रभुके श्रीचरणोंमें गिर पड़े। महाप्रभुने उन्हें उठाया और प्रेमसे गले लगा लिया। चन्द्रशेखर कहने लगे—"प्रभो! आपकी हमपर अपार करुणा है कि आप हमें दर्शन देनेके लिए काशीमें पधारे हैं। अपने दुर्भाग्यके कारण ही हम दोनों यहाँपर पड़े हुए हैं। यहाँ 'माया' एवं 'ब्रह्म' शब्दको छोड़कर कुछ भी सुनायी नहीं पड़ता।"

वहाँके मायावादी संन्यासी प्रभुको भी मायावादी संन्यासी जानकर उन्हें निमन्त्रित करते, परन्तु प्रभु दुःसङ्गके भयसे उनकी वञ्चना कर देते थे। काशीमें प्रकाशानन्द सरस्वती नामका एक बहुत ही प्रसिद्ध संन्यासी था। उसके हजारों शिष्य थे। एक दिन उसका एक बाह्मण शिष्य भी प्रभुकी महिमा सुनकर प्रभुके दर्शन करनेके लिए तपन मिश्रके घर आया। महाप्रभुके अलौकिक स्वरूपका दर्शनकर वह मोहित हो गया। जब वह लौटकर प्रकाशानन्दकी सभामें गया, तो प्रकाशानन्दके सामने श्रीमन्महाप्रभुकी महिमाका गान इस प्रकार करने लगा—"श्रीजगन्नाथपुरीसे एक संन्यासी आये हैं। उनकी महिमाका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उनका दीर्घ शरीर है और उनके शरीरका रङ्ग तपे हुए सोनेके जैसा है। उनकी आजानुलम्बित भुजाएँ हैं और उनके नेत्र कमलके समान हैं। उनका दर्शनकर वैसा ही आनन्द होता है, जैसा कि श्रीनारायणका दर्शन करके होता है। जो भी उनका दर्शन करता है, उसके मुखसे स्वतः ही 'कृष्ण-कृष्ण'

निकलने लगता है। शास्त्रोंमें एक महाभागवतके जो लक्षण बताये गये हैं, वे सब लक्षण उनमें स्पष्ट रूपसे दीखते हैं। उनके श्रीमुखसे निरन्तर कृष्णनाम निकलता रहता है तथा उनके दोनों नेत्रोंसे गङ्गा एवं यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है। जैसा उनका अलौकिक स्वरूप है, वैसा ही उनका नाम भी है—श्रीकृष्णचैतन्य।"

यह सुनकर प्रकाशानन्द जोर-जोर-से हँसने लगा और उस ब्राह्मणका उपहास करते हुए बोला—"हाँ-हाँ। मैंने भी सुना है कि बङ्गालसे एक पागल संन्यासी आया है। वह केशव भारतीका शिष्य है। उसका नाम चैतन्य है और अपने ही जैसे कुछ पागलोंको साथ लेकर गाँव-गाँव एवं नगर-नगरमें नाचते-कूदते हुए घूमता रहता है। सुना है कि उसके पास ऐसी मोहिनी शक्ति है कि जो एकबार उसका दर्शन कर लेता है, वह भी उसीकी भाँति पागल होकर रोते-रोते नाचने एवं गाने लगता है। मैंने यहाँ तक सुना है कि उस पागलने पुरीमें सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे गम्भीर एवं असाधारण पण्डितको भी पागल बना दिया। अब तो वह भी अपना ध्यान आदि छोड़कर पागलोंकी भाँति कीर्त्तन और नृत्य करने लगा है। वह चैतन्य केवल नाममात्रका संन्यासी है। वास्तवमें वह कोई जादूगर है। परन्तु यह काशी नगरी है। यहाँ उसका जादू नहीं चलनेवाला। अतः तुमलोग चुपचाप मेरे पास वेदान्त सुनो। उसके निकट मत जाना। ऐसे उद्दण्ड लोगोंके चक्करमें फँसकर लोक-परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।"

यह सुनकर उस ब्राह्मणको बहुत दुःख हुआ। महाप्रभुके दर्शनसे उसका चित्त शुद्ध हो गया था। अतः वह 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर वहाँसे उठकर आ गया। दूसरे दिन वह जब पुनः महाप्रभुके पास आया, तो प्रभुसे कहने लगा—"प्रभो! प्रकाशानन्द सरस्वती आपकी निन्दा करता है।" यह सुनकर प्रभु मुस्कराने लगे। महाप्रभुको मुस्कराते हुए देखकर उसने पुनः पूछा—"प्रभो! जब मैंने उसे आपका परिचय दिया, तो वह कहने लगा—हाँ! हाँ! मैं जानता हूँ। ऐसा कहकर उसने तीन बार आपका नाम लिया, परन्तु आधा ही अर्थात् चैतन्य-चैतन्य-चैतन्य। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि उसने आपका पूरा नाम श्रीकृष्णचैतन्य क्यों नहीं कहा?"

प्रभु हँसते हुए बोले—"मायावादी लोग श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण तथा लीला इत्यादिको नित्य नहीं मानते, अतः वे श्रीकृष्णके चरणोंमें अपराधी हैं। उनके मुखसे कृष्णनाम नहीं निकल सकता, क्योंकि श्रीकृष्णके नाम और उनके स्वरूपमें कोई भेद नहीं है।" ऐसा कहकर प्रभुने उस ब्राह्मणपर कृपा की और वृन्दावनकी ओर चल पड़े।

## मथुरामें श्रीमन्महाप्रभुका आगमन

श्रीमन्महाप्रभु प्रेममें उन्मत्त होकर नृत्य एवं कीर्त्तन करते हुए मथुराकी ओर चले जा रहे थे। ज्यों-ज्यों वे वृन्दावनकी ओर बढ़ रहे थे, त्यों-त्यों उनका प्रेम-आवेश भी बढ़ रहा था। मार्गमें जहाँपर भी उन्हें यमुनाजीका दर्शन होता, वे उसमें कूद पड़ते। तब बड़े कष्टसे बलभद्र तथा उनका सेवक प्रभुको बाहर निकालते थे। इस प्रकार चलते-चलते प्रभु मथुरा पहुँचे। मथुरा पहुँचकर सर्वप्रथम वे विश्रामघाट गये, और वहाँपर स्नान किया। तत्पश्चात् जन्मभूमि और आदिकेशव आदिका दर्शन किया। श्रीकेशवदेवका दर्शन करते ही वे प्रेममें आविष्ट होकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। उस समय वहाँपर एक सनोड़िया ब्राह्मण भी उपस्थित था। प्रभुका दर्शनकर वह भी प्रेमाविष्ट होकर प्रभुके साथ नृत्य करने लगा। उसे देखकर प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। जब उसने प्रभुको प्रणाम किया तो प्रभुने पूछा—"आप कौन हैं?" वह बोला—"मैं श्रीमाधवेन्द्रपुरीका शिष्य हूँ।" यह सुनकर प्रभुने प्रसन्न होकर उसे गलेसे लगा लिया। उस बाह्मणने प्रभुको अपने घरमें भोजनके लिए निमन्त्रित किया। श्रील माधवेन्द्र पुरीका शिष्य होनेके कारण महाप्रभुने उसका आतिथ्य स्वीकार किया और उसके घर पहँचे। श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिए हजारों लोग उसके घरके बाहर एकत्रित हो गये। तब प्रभुने घरसे बाहर आकर सबको दर्शन देकर धन्य किया। तत्पश्चात् उस ब्राह्मणने प्रभुको मथुराके चौबीस घाट—स्वामीघाट, विश्रामघाट, ध्रुवघाट इत्यादि एवं भूतेश्वर महादेव, दीर्घविष्णु इत्यादि विग्रहोंका दर्शन कराया। जब श्रीमन्महाप्रभुजीकी बारह वनोंके दर्शन करनेकी इच्छा हुई तो उस ब्राह्मणको साथ लेकर प्रभुने मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन

आदि बारह वनोंका दर्शन किया। मार्गमें चरती हुई गायें प्रभुका दर्शन करते ही दौड़कर आतीं और स्नेहसे उन्हें चाटने लगतीं। यह देख प्रभुको अपनी कृष्णलीलाका स्मरण हो आता। वे भी गायोंके गलेसे लिपटकर जोर-जोरसे रोने लगते। हिरणियाँ, कोयल, मोर, तोते आदि पशु-पक्षी भी प्रभुका दर्शनकर प्रफुल्लित हो रहे थे। मानो आज बहुत दिनोंके बाद उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हो रहे हों। वे सभी प्रभुके साथ-साथ चलने लगते। पशु-पक्षियोंकी तो बात ही क्या, वृन्दावनके वृक्ष एवं लताओंसे भी मधु झरने लगा। फलोंसे लदी हुई वृक्षोंकी टहनियाँ प्रभुके चरणोंमें ऐसे झुक जाती थीं, जैसे बहुत दिनोंके पश्चात् अपने प्रिय बन्धुसे मिलनेपर कोई व्यक्ति उसे बहुत प्रेमसे उपहार प्रदान करता है।

इस प्रकार द्वादश वनोंका दर्शनकर श्रीमन्महाप्रभु आरिटग्राम पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने श्रीराधाकुण्ड एवं श्रीश्यामकुण्डका प्रकाशकर उसमें स्नान किया तथा अपने साथ वहाँकी कुछ मिट्टी भी ले ली। वहाँसे प्रभु गोवर्धन पहुँचे। गोवर्धनका दर्शनकर प्रभुने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और एक शिलाको आलिङ्गनकर अपनी पूर्व लीलाओंका स्मरण करते हुए पागलोंकी भाँति रोने लगे। उस रात वे श्रीहरिदेवजीके मन्दिरमें रहे। रातको वे विचार करने लगे कि मैं गोवर्धन पर्वतपर नहीं चढ़ूँगा। अतः मुझे श्रीमाधवेन्द्रपुरी पादजीके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगोपालजी जो कि गोवर्धनके ऊपर विराजमान हैं, उनका दर्शन कैसे होगा?

महाप्रभुकी इच्छा जानकर श्रीगोपालजीने एक लीला की। गोवर्धनके निकट ही गाठौली नामक एक गाँव है। वहाँसे कोई व्यक्ति ऊपर मन्दिरमें जाकर पुजारीसे बोला कि कल मुसलमान यहाँ आयेंगे, वे सभी पुजारियोंको मार डालेंगे और ठाकुरजीको ले जायेंगे। यह सुनकर पुजारी भयभीत हो गये तथा श्रीगोपालजीको नीचे उसी गाँवमें छिपाकर भाग गये। जब महाप्रभुको पता चला कि गोपालजी नीचे आ गये हैं, तब उन्होंने आनन्दपूर्वक गोपालजीका दर्शन किया। दूसरे दिन मानसी-गङ्गामें स्नानकर प्रभुने सनोड़िया ब्राह्मण, बलभद्र भट्टाचार्य एवं उनके सेवकके साथ गोवर्धनकी परिक्रमा की और मार्गमें गोविन्दकुण्ड, सुरभिकुण्ड, उद्धवकुण्ड आदिका दर्शन किया। तत्पश्चात्

प्रभुने काम्यवन, नन्दगाँव और बरसाना आदिका भी दर्शन किया। वहाँसे वे वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावनमें उन्होंने सभी लीलास्थलियोंका दर्शन किया। वृन्दावनमें प्रभु अक्रूरघाटपर रहते थे। परन्तु प्रातःकाल वृन्दावनमें यमुनाके तटपर स्थित इमलीतला नामक स्थानपर आ जाते थे, क्योंकि अक्रूरघाटपर प्रभुके दर्शनोंके लिए लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी, जिससे उनकी नामसंख्या पूर्ण नहीं हो पाती थी। दोपहर तक निर्जनमें हरिनामकी संख्या पूर्णकर प्रभु पुनः अक्रूरघाट लौट आते तथा वहाँपर आनेवाले लोगोंको दर्शन देकर धन्य करते थे।

## पठानोंपर कृपा

बलभद्र भट्टाचार्य लोगोंकी भीड़से तङ्ग आ चके थे। इसके अतिरिक्त महाप्रभु कभी-कभी आविष्ट होकर यमुनामें छलाङ्ग लगा देते थे, उस समय वे बहुत कष्टसे प्रभुको बाहर निकालते थे। अतः वे विचार करने लगे कि यदि कभी प्रभु अकेले रहते समय आविष्ट होकर यमुनामें छलाङ्ग लगा देंगे, तो अनर्थ हो जायेगा। इसलिए उन्होंने प्रभुको वृन्दावनसे जगन्नाथ पुरी लौटा ले जानेका विचार किया और प्रभुसे वापस चलनेकी प्रार्थना की। यद्यपि प्रभुकी वृन्दावन छोड़नेकी इच्छा नहीं हो रही थी, तथापि बलभद्र एवं उसके सेवककी प्रसन्नताके लिए प्रभुने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस प्रकार प्रभु उन दोनोंके साथ वापस लौट चले।

वापस जाते समय मार्गमें एक स्थानपर एक गोपबालक वंशी बजा रहा था। वंशीध्वनि सुनते ही प्रभु मूर्च्छित हो गये और उनके मुखसे झाग निकलने लगा। उसी समय कुछ पठान घुड़सवार वहाँसे गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक अति सुन्दर संन्यासी बेहोश पड़ा है और उसके पास ही चार लोग बैठे हैं। यह देखकर उन पठानोंने समझा कि ये चारों डकैत हैं तथा इन्होंने इस सुन्दर संन्यासीका धन हरण करनेके लिए इसे विष खिला दिया है, इसीलिए इसके मुखसे झाग निकल रहा है। उन्होंने इन चारोंको बाँध दिया और तलवारसे काटनेको तैयार हो गये। इससे ये चारों भयभीत हो गये। उसी समय प्रभुकी मूर्च्छा भङ्ग हो गयी और वे 'हरि-हरि' कहते

हुए उठ बैठे। यह देखकर उन पठानोंके सरदारने प्रभुसे कहा कि इन लुटेरोंने आपको विष दे दिया था।

महाप्रभु बोले—"ये लुटेरे नहीं, बल्कि मेरे साथी हैं। मुझे मिर्गी रोग है, इसीलिए मैं बेहोश हो गया था और मेरे मुखसे झाग निकल रहा था।"

महाप्रभुके स्वरूपका दर्शनकर सभी पठान मोहित हो गये थे। उनमें एक मौलाना (मुसलमान पण्डित) था। अतः उसने अपने कुरान शास्त्रके अनुसार प्रभुके साथ विचार-विमर्श आरम्भ करते हुए निराकार ब्रह्मकी स्थापना की, परन्तु श्रीमन्महाप्रभुने उसके विचारका खण्डन कर दिया। इस प्रकार वह जो-जो युक्तियाँ देता, प्रभु उन्हींका खण्डन कर देते। इस प्रकार अन्तमें उसका मुँह बन्द हो गया और वह कहने लगा—"हे संन्यासी महाशय! मुझे तो ऐसा लगता है कि आप स्वयं खुदा हैं, अतः मुझ अधमपर कृपा कीजिये।"

'कृष्ण कृष्ण' कहकर वह प्रभुके श्रीचरणोंमें गिर पड़ा। महाप्रभु बोले—"उठो! उठो! तुम्हारे मुखसे कृष्णनाम निकला है। अतः तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो गये हैं। आजसे तुम्हारा नाम रामदास हो गया।" उनमें ही एक कम उम्रका पठान भी था। उसका नाम बिजलीखान था। वह राजकुमार था और सभी पठान उसके सेवक थे। वह भी 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। उन सबपर कृपाकर प्रभु आगे चल पड़े। इस प्रकार प्रभुका दर्शनकर उन सबका चित्त बदल गया। अब वे सभी पठान वैरागी हो गये थे।

## श्रीरूप-शिक्षा

जब श्रीमन्महाप्रभु वापस प्रयागमें पहुँचे तो वहाँ उनकी भेंट श्रीरूप गोस्वामीसे हुई। जगन्नाथपुरीसे वृन्दावन आते समय श्रीचैतन्य महाप्रभु बङ्गालमें जब रामकेलि नामक स्थानपर पहुँचे, तब वहाँपर श्रीरूप अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीसनातनके साथ महाप्रभुसे मिले थे। ये दोनों वहाँके बादशाह हुसैनशाहके क्रमश वित्तमन्त्री एवं प्रधानमन्त्री थे। प्रभुने इन्हें आदेश दिया था कि अतिशीघ्र ही विषयोंको त्यागकर मेरे पास आओ। परन्तु बादशाह इन दोनोंको छोड़ना नहीं चाहता

था। अतः ये दोनों चतुरतापूर्वक वहाँसे निकल आये। पहले श्रीरूप गोस्वामी आकर प्रयागमें प्रभुसे मिले। उन्हें देखकर प्रभुको बहुत आनन्द हुआ। दस दिन प्रयागमें रहकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपको भक्ति-रसतत्त्वकी शिक्षा दी, जिसको श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, विदग्ध-माधव और ललित-माधव आदि ग्रन्थोंमें गागरमें सागरकी भाँति भर दिया है।

श्रीमन्महाप्रभु कहने लगे—"हे रूप! सभी जीव अपने कर्मफलके अनुसार अनादिकालसे इस ब्रह्माण्डमें उच्च-नीच योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। उनमेंसे किसी सौभाग्यवानको भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके प्रभावसे साधुसङ्ग प्राप्त होता है। [ज्ञात अथवा अज्ञातमें भी यदि कोई किसी भी प्रकारसे भक्तिके ६४ अङ्गोंमेंसे किसी एक अङ्गका भी पालन कर लेता है, तो उसकी भक्ति-उन्मुखी सुकृति हो जाती है। अर्थात् उसके प्रभावसे वह भक्तिके उन्मुख हो जाता है] तत्पश्चात् साधुसङ्गमें गुरुकी महिमा जानकर गुरु एवं कृष्णकी कृपासे भक्तिलताका बीज अर्थात् 'श्रद्धा' प्राप्त करता है। उस बीजको प्राप्तकर वह उसे हृदयरूपी खेतमें रोप देता है तथा उसमें श्रवण-कीर्त्तनरूपी खाद-जल प्रदान करता है। अर्थात् भगवान्के नाम, रूप, गुण आदिका श्रवण तथा कीर्त्तन करता है, जिसके फलस्वरूप बीज अङ्कुरित होकर भक्तिलताके रूपमें परिणत हो जाता है। वह भक्तिलता बढ़ते-बढ़ते ब्रह्माण्डको भेदकर विरजा एवं ज्योतिर्मय ब्रह्मलोकको भी भेदकर क्रमशः वैकुण्ठलोक तक पहुँच जाती है। वहाँसे वह गोलोक वृन्दावनमें पहुँचकर कृष्णके चरणरूपी कल्पवृक्षपर आरोहण करती है। कृष्णके चरणोंमें आरूढ़ होते ही उस भक्तिलतामें 'प्रेमफल' प्रकट हो जाता है। अभी तक माली [अर्थात् श्रद्धावान भक्त जिसने भक्तिलता बीजको अपने हृदय क्षेत्रमें बोया है] को उस लताको श्रवण-कीर्त्तनरूपी जलसे सींचना पड़ता है। इस प्रक्रियामें जल सिञ्चनके अतिरिक्त मालीका एक और भी कार्य होता है—जब लता बढ़ने लगती है, तो उस समय उसे लताके चारों ओर काँटोंकी बाड़ लगानी पड़ती है, जिससे कि कोई जन्तु-जानवर आकर उसे खा न जायें। वैष्णव अपराध ही दुष्ट जन्तु-जानवरोंके समान हैं। वैष्णव-अपराध पागल हाथीकी भाँति होता है, जो भक्तिलताको जड़से उखाड़ फैंकता है। ऐसे समयमें एक

अन्य बाधा भी लताको बढ़नेसे रोक देती है। अर्थात् जब लता बढ़ने लगती है, तो उस समय यदि लतामें उपशाखाएँ अधिक हो जायँ, तो लता अच्छी प्रकारसे बढ़ नहीं पाती। जल-खाद आदि पाकर उपशाखाएँ तो तेजीसे बढ़ने लगती हैं, परन्तु मूल लताका बढ़ना बन्द हो जाता है। भुक्ति अर्थात् भोगोंकी इच्छा, मुक्तिकी इच्छा, शास्त्रविरुद्ध आचरण, जीवहिंसा, मान-सम्मानकी प्रबल इच्छा आदि ही भक्तिलतामें उपशाखाएँ हैं। इसलिए साधकको चाहिये कि वह श्रवण-कीर्त्तनरूपी जलसिञ्चनके समय ही इन सब उपशाखाओंको काट डाले, तभी मूल भक्तिलता तीव्रतासे बढ़ते हुए वृन्दावनमें श्रीकृष्णके चरणोंमें पहुँच सकती है तथा उसमें प्रेमफल लग सकता है। यह प्रेम ही जीवोंके लिए परम पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ ही कृष्णप्रेमके समक्ष तृणके समान हैं।

इस प्रकार श्रीरूप गोस्वामीको शिक्षा प्रदानकर श्रीचैतन्य महाप्रभुने लुप्त लीलास्थलियोंको प्रकाशित करनेका आदेश देकर उन्हें वृन्दावन भेज दिया तथा स्वयं पुनः काशीमें चन्द्रशेखर वैद्यके घरपर उपस्थित हुए।

## श्रीसनातन-शिक्षा

श्रीसनातन गोस्वामी हुसेनशाहके कारागारसे चतुरतापूर्वक निकल आये तथा चलते-चलते प्रभुके दर्शनोंकी अभिलाषासे जब काशीमें पहुँचे, तो उन्होंने सुना कि प्रभु इस समय काशीमें ही चन्द्रशेखरके गृहमें विराजमान हैं। यह सुनकर वे अति प्रसन्न हुए। लोगोंसे पूछते-पूछते वे चन्द्रशेखरके घरमें पहुँचे। उन्हें देखकर प्रभुके आनन्दकी सीमा न रही। प्रभुने उन्हें प्रेमसे गले लगा लिया। कई दिनों तक लगातार चलते रहनेके कारण सनातन गोस्वामीका वेश अस्त-व्यस्त हो गया था। प्रभुने चन्द्रशेखरको उनका संस्कार करनेका आदेश दिया। चन्द्रशेखरने उनका मुण्डन आदि कराया तथा गङ्गामें स्नान कराकर उन्हें नये वस्त्र देने चाहे, परन्तु सनातन गोस्वामीने उन्हें लेनेसे मना कर दिया तथा बोले—"यदि आप देना ही चाहते हैं, तो अपना व्यवहार किया हुआ कोई पुराना वस्त्र दे दीजिये।" तब

चन्द्रशेखरने उन्हें एक पुरानी धोती प्रदान की। सनातनने उसे स्वीकार कर लिया। सनातनके पास एक बहुमूल्य कम्बल था। जब-जब वे प्रभुसे मिलते थे, प्रभु बार-बार उस कम्बलकी ओर ताकते रहते थे। बुद्धिमान सनातन गोस्वामी समझ गये कि प्रभुको यह कम्बल पसन्द नहीं है। अतः वे गङ्गाके किनारे गये और देखा कि वहाँपर एक भिखारीने अपनी फटी-पुरानी गुदड़ी सुखाने डाली हुई थी। सनातन गोस्वामीने उसे अपना कम्बल दे दिया तथा उसकी गुदड़ी ले ली। जब वे उस गुदड़ीको ओड़कर प्रभुके पास आये तो प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु कहने लगे—"सनातन! अब कृष्णने तुम्हारे अन्तिम विषयरोगको भी नष्ट कर दिया है।"

तब श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुसे प्रश्न किये तथा महाप्रभुने उन्हें जीवतत्त्व, कृष्णतत्त्व, भक्तितत्त्व, वैधी और रागानुगा भक्ति आदिकी शिक्षा प्रदान की, जिसे श्रीसनातन गोस्वामीने अपनी श्रीमद्भागवतकी टीका, श्रीबृहद्भागवतामृत आदि ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन किया है। श्रीसनातनको शिक्षा प्रदानकर प्रभुने उन्हें भी वृन्दावनकी लुप्त लीलास्थलियों और भक्ति-ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेके लिए वृन्दावन भेज दिया।

## प्रकाशानन्द सरस्वतीका उद्धार

काशीमें सभी मायावादी जहाँ-तहाँ प्रभुकी निन्दा कर रहे थे। जिससे तपनमिश्र, चन्द्रशेखर और वह विप्र जो श्रीमन्महाप्रभुका दर्शनकर प्रभुका भक्त बन चुका था, बहुत दुःखी होते थे। उस विप्रने विचार किया कि प्रभु तो स्वयं-भगवान् हैं, यदि एकबार वे सब मायावादी संन्यासी प्रभुका दर्शन करें, तो अवश्य ही वे सभी भक्त हो जायेंगे। अतः उन संन्यासियोंको प्रभुसे मिलानेके लिए उसने एक योजना बनायी। उसने सभी मायावादी संन्यासियोंको अपने घरपर आमन्त्रित किया। तत्पश्चात् वह प्रभुके पास गया और उनसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभो! मैंने कल समस्त संन्यासियोंको आमन्त्रित किया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप भी कृपापूर्वक कल मेरे घरमें पधारें।"

अन्तर्यामी महाप्रभु उसके हृदयकी बात जान गये कि यह संन्यासियोंका उद्धार चाहता है। अतः भक्तवत्सल प्रभुने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन जब महाप्रभु उसके घर पहुँचे, तो उन्होंने वहाँ पहलेसे ही संन्यासियोंको बैठे हुए देखा। प्रभु सभीको प्रणामकर अपने चरण धोनेके लिए गये। चरणोंको धोनेके बाद वे उसी अपवित्र स्थानपर ही बैठ गये। उस समय महाप्रभुने अपना कुछ ऐश्वर्य प्रकाशित किया। प्रभुके शरीरसे करोड़ो सूर्योंके समान तेज निकल रहा था। प्रभुका दर्शनकर सभी संन्यासी मोहित हो गये तथा सभी अपना-अपना आसन छोड़कर खड़े हो गये। उन संन्यासियोंका गुरु प्रकाशानन्द आदरपूर्वक बोला—"हे श्रीपाद! आप इस अपवित्र स्थानपर क्यों बैठे हैं? कृपापूर्वक यहाँ आकर आसनपर विराजिये।" प्रभु बोले—"मैं एक निम्न सम्प्रदायका संन्यासी हूँ। अतः आप जैसे श्रेष्ठ संन्यासियोंके बीच बैठने योग्य नहीं हूँ।"

यह सुनकर प्रकाशानन्द स्वयं महाप्रभुके पास गया और सम्मानपूर्वक उनका हाथ पकड़कर उन्हें सभाके बीच एक उत्तम आसनपर बैठाया। तब वह पूछने लगा—"आपका नाम श्रीकृष्णचैतन्य है। आप एक साम्प्रदायिक संन्यासी केशव भारतीके शिष्य हैं। फिर क्या कारण है कि आप यहाँपर रहते हुए भी हमलोगोंसे मिलने नहीं आते? इसके अतिरिक्त आप एक संन्यासी होकर कुछ भावुकोंके साथ मिलकर नृत्य एवं कीर्त्तन क्यों करते हैं? यह तो संन्यासीका धर्म नहीं है। संन्यासीको तो गम्भीर होना चाहिये। उसे सदा-सर्वदा वेदान्त अध्ययन और निर्विशेष ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। आपको देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप साक्षात् नारायण ही हैं, फिर आप ऐसा घृणित कार्य क्यों करते हैं?"

यह सुनकर प्रभु कहने लगे—"हे श्रीपाद! मेरे श्रीगुरुदेवने मुझे मूर्ख जानकर यह आदेश दिया है कि वेदान्त अध्ययनमें तुम्हारा अधिकार नहीं है, अतः तुम सर्वदा समस्त मन्त्रोंके सार कृष्णमन्त्रका जप करो। इस मन्त्रसे तुम्हारा संसार-बन्धन नष्ट हो जायेगा तथा कृष्णनामके द्वारा श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त करोगे। इस कलियुगमें केवल कृष्णनामके द्वारा ही किसीका उद्धार हो सकता है, ऐसा कहकर उन्होंने मुझे एक श्लोक स्मरण करवाया—

*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।*
*कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥*

(बृहन्नारदीयपुराण ३८/१२६)

कलियुगमें केवल हरिनाम, हरिनाम एवं हरिनामके द्वारा ही सद्गति हो सकती है; हरिनामके अतिरिक्त अन्य किसी भी साधनसे सद्गति नहीं हो सकती, नहीं हो सकती, नहीं हो सकती।

"गुरुदेवका आदेश पाकर मैं निरन्तर कृष्णनाम-कीर्त्तन करने लगा। परन्तु आश्चर्यकी बात है कि कृष्णनाम-कीर्त्तन करते-करते कुछ दिनोंमें ही मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी। मैं अधीर होकर पागलोंकी भाँति कभी नृत्य करने लगा, कभी रोने लगा तो कभी गाने लगा। इससे मैं भयभीत हो गया। मैंने सोचा कि इस कृष्णनामने मेरा ज्ञान नष्ट कर दिया और मुझे पागल कर दिया है। अतः मैं गुरुदेवके पास गया और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया।" मेरी अवस्थाको सुनकर गुरुदेव प्रसन्न होकर कहने लगे—'हरेकृष्ण-महामन्त्रका यही फल है कि जो इसका कीर्त्तन करता है, उसकी श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें भक्ति उत्पन्न हो जाती है। कृष्णप्रेम ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका शिरोमणि है। समस्त शास्त्र ही घोषणा कर रहे हैं कि कृष्णनामका फल—कृष्णप्रेम है। तुम्हारा बहुत सौभाग्य है कि तुम्हारे हृदयमें कृष्णप्रेम उदित हो गया है। कृष्णप्रेमका ऐसा ही स्वभाव है कि वह जिसके हृदयमें उदित हो जाता है, तो वह भक्त कभी हँसने लगता है, कभी रोने लगता है, कभी गाने लगता है, तो कभी नाचते हुए पागलोंकी भाँति इधर-उधर दौड़ने लगता है। बहुत सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारी ऐसी अवस्था हो गयी है। तुम्हारी ऐसी अपूर्व अवस्थासे मैं भी कृतार्थ हो गया। अब तुम भक्तोंके साथ नाचो, गाओ, कीर्त्तन करो और लोगोंको कृष्णनाम-कीर्त्तनका उपदेश प्रदान करके उनका भी उद्धार करो।' तबसे मैं अपने श्रीगुरुदेवकी आज्ञानुसार निरन्तर कृष्णनाम-कीर्त्तन करता हूँ। मैं अपनी इच्छासे नृत्य-कीर्त्तन आदि नहीं कर रहा हूँ, बल्कि यह सब प्रभाव 'हरेकृष्ण-महामन्त्र' का ही है।"

प्रभुके अत्यन्त सुमधुर वचनोंको सुनकर संन्यासियोंका हृदय बदल गया। वे नम्रता एवं आदरपूर्वक प्रभुसे बोले—"आप सत्य कह रहे

हैं। कोटि-कोटि जन्मोंके सौभाग्यके फलसे ही कृष्णप्रेम प्राप्त होता है। आप कृष्णभक्ति करते हैं, यह तो ठीक है, परन्तु आप वेदान्त क्यों नहीं सुनते? उसमें क्या दोष है?"

यह प्रश्न सुनकर महाप्रभु हँसते हुए कहने लगे—"यदि आप लोग दुःखी न हों, तो मैं कुछ कहूँ।"

संन्यासी बोले—"आपका दर्शनकर ऐसा प्रतीत होता है कि आप साक्षात् नारायण हैं। आपकी सुन्दरताको देखकर एवं मधुरवाणीका श्रवणकर हमारा मन ही नहीं भर रहा है। आपके दर्शनसे हम सभी आनन्दित हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप जो कुछ भी कहेंगे, शास्त्रोंके अनुसार ही कहेंगे।"

यह सुनकर प्रभु कहने लगे—"भगवान् श्रीनारायणने ही वेदव्यासजीके रूपमें अवतीर्ण होकर वेदान्तसूत्रकी रचना की है। भगवान्‌में भ्रम, प्रमाद (अन्यमनस्कता), विप्रलिप्सा (दूसरोंको ठगनेकी इच्छा) और

करणापाटव (इन्द्रियोंकी अपूर्णता)—ये चार दोष नहीं हैं। वेदान्तसूत्रमें भगवान्‌का ही प्रतिपादन किया गया है, अर्थात् उसमें भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला एवं परिकरोंकी नित्यताके विषयमें ही वर्णन किया गया है। परन्तु श्रीशङ्कराचार्यने उन सूत्रोंका गौण अर्थकर शाङ्कर भाष्यकी रचना की। यद्यपि परम-वैष्णव होनेके कारण वे ऐसा घृणित कार्य नहीं करना चाहते थे, परन्तु भगवान्‌का आदेश पालन करनेके लिए ही उन्हें ऐसा करना पड़ा। भगवान्‌ने उन्हें आदेश दिया था कि तुम एक असत् शास्त्रकी रचनाकर मुझे ढक दो इसके फलस्वरूप मुक्तिकामी लोग मुझसे दूर हो जायेंगे और मेरे प्रिय भक्त सहज ही मेरा भजन कर पायेंगे। भगवान्‌के इसी आदेशका पालन करनेके लिए श्रीशङ्कराचार्यने अपने शाङ्करभाष्यमें भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला एवं उनके परिकरोंको मायिक अर्थात् अनित्य कहकर वर्णन किया। इस प्रकार उन्होंने वेदान्तसूत्रके मुख्य अर्थको छिपाकर गौण अर्थ किया है। उन्होंने जीवकी सत्ताको ही अस्वीकार कर दिया। उनका मत है कि ब्रह्म एक है तथा निराकार है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जब वह निराकार ब्रह्म मायासे आच्छादित हो जाता है, तो उस समय वह असंख्य जीवोंके रूपमें दिखायी देता है। पुनः मायासे मुक्त होनेपर वे जीव पुनः निराकार ब्रह्ममें मिलकर एक हो जाते हैं। जिस प्रकार एक ही सूर्य एक सौ जलसे भरे हुए पात्रोंमें प्रतिबिम्बित होकर एक सौ रूपोंमें दिखायी देता है, परन्तु सभी पात्रोंके नष्ट हो जानेपर केवल एक सूर्य ही रह जाता है। जीव तभी तक हैं, जब तक मायाके अधीन हैं। मायामुक्त होते ही जीव निराकार ब्रह्ममें उसी प्रकार मिलकर एक हो जाते हैं, जिस प्रकार एक मिट्टीके घड़ेके अन्दरका आकाश घड़ेके फूट जानेपर बाह्य महाकाशमें मिलकर एक हो जाता है।

"इस प्रकार शिवजी जो कि संहार करते हैं, उन्होंने ही भगवान्‌की इच्छासे ऐसे महाविनाशक कुमतका प्रचार किया। जो शङ्करभाष्यको स्वीकार करता है, उसका विनाश निश्चित है। वास्तवमें भगवान् अग्निके समान हैं तथा जीव अग्निसे निकलनेवाली चिङ्गारियोंके समान हैं। भगवान् एवं जीवमें अंशी-अंशका सम्बन्ध है। भगवान् अंशी हैं, जीव उनका अंश है। जिस प्रकार चिङ्गारियाँ अग्निसे

निकलती हैं, उसी प्रकार अनन्त जीव भगवान्‌से प्रकट होते हैं। इस तत्त्वको समझानेके लिए ही व्यासदेवने परिणामवादकी स्थापना की। एक सत्य वस्तुसे दूसरी सत्य वस्तुके उत्पन्न होनेपर उसे पहली वस्तुका परिणाम या विकार कहते हैं—जैसे दूधमें जाम (थोड़ा दही) डाल देनेपर दूध, दही हो जाता है। उस समय उसके प्रति दूधकी नहीं, बल्कि दूधसे भिन्न एक अलग वस्तु दहीकी बुद्धि होती है। यही परिणाम या विकार है। अर्थात् ब्रह्म एक सत्य वस्तु है, उससे जीव एवं जगत्—ये सत्य वस्तु उत्पन्न होते हैं। इसलिए जीव एवं जगत्‌को भगवान्‌का परिणाम कहा जाता है। श्रीशङ्कराचार्यने विचार किया कि ब्रह्म तो निर्विकारी है। अतः यदि जीव एवं जगत्‌को उनका परिणाम मान लेंगे तो ब्रह्म विकारी हो जायेगा, जो कि शास्त्रविरुद्ध है।

"परन्तु उनका यह विचार सर्वथा निराधार है, क्योंकि परिणामवादको स्वीकार करनेपर भी ब्रह्मका निर्विकारत्व नष्ट नहीं होता। इस जड़-जगत्‌में ही कई वस्तुएँ ऐसी हैं कि जिनसे बहुत कुछ उत्पन्न होनेपर भी वह वस्तु अपने स्वरूपमें स्थित रहती हैं। जैसे—चिन्तामणिसे रत्नोंका ढेर उत्पन्न होनेपर भी चिन्तामणिमें कोई विकार नहीं आता, वह जैसी-की-तैसी ही रहती है। एक मकड़ी अपने मुखसे लार निकालकर विशाल जालका निर्माण करती है, फिर भी उसके स्वरूपमें कोई विकार नहीं आता अर्थात् वह कमजोर या छोटी नहीं हो जाती है। जब एक जड़-वस्तुकी ऐसी अचिन्त्य या अद्भुत शक्ति है, तब यदि भगवान् अपने स्वरूपमें स्थित रहकर ही अपनी अचिन्त्यशक्तिसे अनन्त जीवों एवं अनन्त ब्रह्माण्डोंको प्रकट करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु इस तत्त्वको न जानकर ही परिणामवादको स्वीकार करनेपर ब्रह्म विकारी हो जाता है, इस भयसे श्रीशङ्कराचार्यने 'विवर्त्तवादकी' स्थापना की। अज्ञानवशतः एक वस्तुके प्रति अन्य वस्तुकी बुद्धिको विवर्त्त कहते हैं। जैसे अन्धकारमें मार्गमें पड़ी हुई रस्सीके प्रति सर्पकी बुद्धि हो जाती है। यहाँपर वास्तवमें रस्सी सर्प नहीं है, अन्धकारके कारण सर्प जैसी दिखायी पड़ रही है। परन्तु प्रकाश होनेपर हमारा भ्रम नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार अज्ञानके कारण ही निराकार ब्रह्मके प्रति जीव बुद्धि हो रही है।

यही विवर्त्त है। ज्ञान हो जानेपर हमारा यह भ्रम दूर हो जाता है। उस समय एक ही बुद्धि रहती है कि ब्रह्म ही सत्य वस्तु है, जीव और जगत् नहीं। वास्तवमें माण्डुक्य आदि उपनिषदोंमें जिस विवर्त्तवादका उल्लेख पाया जाता है, वह इस जड़-शरीरके प्रति आत्मबुद्धिके विषयमें है। अर्थात् जड़-शरीरमें आबद्ध होनेके कारण जीव इस जड़-शरीरको आत्मा मानता है, जो कि सत्य नहीं है। अज्ञानताके कारण ही ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु ज्ञान हो जानेपर उसकी ऐसी कुबुद्धि नष्ट हो जाती है। उस समय वह जान जाता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, शरीरमें रहनेवाली आत्मा हूँ। आसुरिक प्रवृत्तिवाले लोगोंको मोहित करनेके लिए ही श्रीशङ्कराचार्यने सूत्रोंका स्वाभाविक अर्थ न कर गौण अर्थकर कुसिद्धान्तोंकी स्थापना की है।"

यह सुनकर सभी मायावादी संन्यासी विस्मित हो गये। अब वे कहने लगे—"हे श्रीपाद! आपने जो कुछ कहा, वह सत्य है। हम भी जानते हैं कि श्रीशङ्कराचार्यने जो कुछ कहा वह गलत है, परन्तु अपने सम्प्रदायके प्रति प्रीतिभाव होनेके कारण ही हम उनके विचारको स्वीकार करते हैं। हमारा आपसे निवेदन है कि आप कृपापूर्वक वेदान्तसूत्रोंका मुख्य अर्थ हमें सुनायें।"

यह सुनकर प्रभु कहने लगे—"बृहदारण्यकोपनिषदमें छः ऐश्वर्यों [ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री (सौन्दर्य), ज्ञान एवं वैराग्य] से युक्त पूर्णतत्त्वको बृहद्वस्तु कहा गया है। पुराणोंमें भगवान्के ये छः लक्षण बताये गये हैं। अतः शास्त्रोंमें जहाँपर भी ब्रह्म शब्दका प्रयोग है, वहाँ भगवान्को ही समझना चाहिये। इस प्रकार समस्त वेदोंके अनुसार भगवान् सच्चिदानन्दमय वस्तु हैं तथा सम्बन्धतत्त्व हैं। निर्विशेषता उनका एक गुणमात्र है, किन्तु भगवान् निर्विशेष नहीं हैं, अपितु सविशेष हैं। उन्हें निर्विशेष माननेका अर्थ है, भगवान्की चित्-शक्तिको ही न मानना। भगवान्की शक्तिको न माननेपर भगवान्को पूर्ण रूपसे मानना नहीं होता। भगवान्को प्राप्त करनेके लिए श्रवण-कीर्त्तन आदि जिस साधनभक्तिका अवलम्बन किया जाता हैं, उसे अभिधेय कहते हैं। इस अभिधेय या साधनभक्तिका पालन करनेपर ही साधकके हृदयमें प्रेम उत्पन्न होता है। यह प्रेम ही पञ्चम पुरुषार्थ है। प्रेमसे ही श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके वशीभूत हो जाते हैं और भक्त भगवान्की सेवाका

आनन्द प्राप्त कर सकता है। यह प्रेम ही प्रयोजन है। इस प्रकार सभी सूत्रोंमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन—इन तीन तत्त्वोंका ही वर्णन है। मैं कौन हूँ? यह जड़जगत् क्या है? भगवान् क्या हैं? हमारा परस्पर क्या सम्बन्ध है? इन चार प्रश्नोंका उत्तर जान लेनेपर ही सम्बन्ध ज्ञान होता है। सम्बन्धज्ञान उदित होनेपर जीवोंका क्या कर्त्तव्य है, उस कर्त्तव्यको जान लेनेपर उस कर्त्तव्यके पालनको ही शास्त्रोंमें अभिधेय कहा गया है। तथा उन कर्त्तव्योंको पालन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसीका नाम प्रयोजन है।"

श्रीमन्महाप्रभुके इन सिद्धान्तपूर्ण वचनोंको श्रवणकर सभी संन्यासी सन्तुष्ट हो गये और वे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहने लगे—"हे प्रभो! आप साक्षात् श्रीनारायण हैं। हमने पहले आपकी निन्दा करके आपके श्रीचरणोंमें जो अपराध किया है, उसके लिए आप हमें क्षमा कीजिये।"

ऐसा कहकर वे सभी मिलकर कृष्णनामका कीर्त्तन करने लगे। प्रभुने भी सभीके अपराधोंको क्षमाकर उनपर कृपा की। तब सभी संन्यासियोंने श्रीमन्महाप्रभुको अपने बीचमें बैठाकर प्रसाद ग्रहण किया। प्रसाद ग्रहण करनेके बाद प्रभु अपने वासस्थानपर आ गये।

चन्द्रशेखरके घर आकर प्रभु हँसते हुए कहने लगे—"मैं काशीमें अमूल्य कृष्णनामरूपी रत्न बेचनेके लिए आया था। परन्तु यहाँ मुझे कोई खरीदार नहीं मिला। अतः मैंने विचार किया कि मैं इन रत्नोंको वापस ले जाऊँ तो मुझे पुनः बोझा ढोना पड़ेगा, ऐसा जानकर आपलोगोंका मन दुःखी होगा। अतः आपलोगोंकी प्रसन्नताके लिए ही मैंने नामप्रेमका भण्डार निशुल्कमें ही लुटा दिया।

## वैराग्यकी शिक्षा

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु काशीके मायावादियोंका उद्धार करनेके उपरान्त वापस नीलाचल लौट गये। प्रभुने चौबीस वर्षकी आयुमें संन्यास लिया और अड़तालीस (४८) वर्षकी आयुमें अपनी प्रकटलीलाको सम्वरण कर लिया। संन्यासवेश ग्रहण करनेके पश्चात् प्रभुने पहले छः वर्ष भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें भ्रमणकर लोगोंका उद्धार किया।

बाकी अठारह वर्ष उन्होंने नीलाचलमें ही रहकर अनेकों लीलाएँ कीं। उनका आचरण अत्यन्त कठोर था। वे बहुत ही त्याग एवं वैराग्यपूर्वक रहते थे। किसी भी मौसममें वे दिनमें तीन बार स्नान करते थे। वे भूमिपर शयन करते थे। जीवोंको शिक्षा प्रदानके लिए महाप्रभुको इस प्रकार कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करते देखकर भक्तोंको बहुत दुःख होता था। एक दिन जगदानन्द पण्डित जो कि द्वारकालीलामें श्रीकृष्णकी रानी सत्यभामाके अवतार हैं, वे बङ्गालसे बहुत सुशीतल चन्दनका तेल लेकर आये। उन्होंने वह तेल प्रभुके सेवक गोविन्दको दिया और कहा कि प्रभुके विश्रामके समय इसे उनके सिरपर लगाना, इससे उन्हें अच्छी नींद आयेगी। रातको जब प्रभु सोने लगे तब गोविन्द प्रभुके सिरमें उस तेलको लगानेके लिए लाये, इसपर प्रभुने तेलके विषयमें पूछा। गोविन्दने सारी बात बता दी। प्रभु बोले—"जगदानन्दने इस तेलको लानेके लिए बहुत परिश्रम किया है। अतः इसे जगन्नाथदेवके मन्दिरमें जगन्नाथजीकी आरतीके लिए दे देना। इससे जगदानन्दका परिश्रम सार्थक होगा।"

यह बात गोविन्दने जब जगदानन्दको कही तो वे क्रोधित हो गये। उन्होंने वह तेलका घड़ा जमीनपर पटककर फोड़ दिया और अपने घरके भीतर जाकर चुपचाप बैठ गये। यह देखकर प्रभु समझ गये कि इसे मान हो गया है। अतः उन्होंने बहुत कष्टसे उन्हें मनाया।

इसी प्रकार प्रभु केलेके पेड़के छिलकोंपर सोते थे और वे छिलके प्रभुके अति कोमल शरीरपर चुभते थे। यह देखकर सभी भक्तोंको बहुत कष्ट होता था। एक दिन जगदानन्दने एक उपाय खोजा। उन्होंने प्रभुके एक बहुत पतलेसे गेरुवे रङ्गके बहिर्वासके (महाप्रभुके पहननेके वस्त्र) अन्दर सेंमलकी रुई भरकर एक गद्दे जैसा बना दिया और वैसा ही एक तकिया बनाकर गोविन्दको देते हुए बोले—"इस गद्देमें प्रभुको सुलाना।" प्रभुके शयनके समय स्वरूप दामोदर वहींपर थे। उस गद्दे एवं तकियेको देखकर प्रभु क्रोधित हो गये। उन्होंने उस बिस्तरको दूर फेंक दिया तथा पुनः उसी केलेके पेड़के छिलकोंपर ही सो गये। यह देखकर स्वरूप दामोदरने एक उपाय किया। उन्होंने केलेके सूखे हुए पत्तोंको अपने नाखूनोंसे

चीर-चीरकर प्रभुके एक 'बाह्यवस्त्र'—बहिर्वासमें भरकर उसे सिल दिया, जिससे वह एक गद्दा जैसा बन गया। वैसा ही एक ओढ़नेके लिए भी बनाया। सभी भक्तोंके अति आग्रहसे प्रभुने उसपर सोना स्वीकार कर लिया, जिससे भक्तोंको अपार आनन्द हुआ।

## गम्भीरा-लीला

अब श्रीमन्महाप्रभुने भक्तोंके साथ कीर्त्तन इत्यादि बन्द कर दिया। वे सर्वदा गम्भीरामें ही रहते थे। दिनमें वे सबसे मिलते थे, अतः उनका विरह-भाव कुछ शान्त रहता था, परन्तु रात्रिमें एकान्त होते ही प्रभुका विरह-भाव चरमसीमापर पहुँच जाता था। प्रभु विरहिणी श्रीमती राधिकाजीके भावमें आविष्ट होकर उसी प्रकार विलाप करते थे, जिस प्रकार श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर श्रीमती राधाजी विलाप करती थीं। उस समय उनके भावोंके अनुरूप स्वरूपदामोदर (ललिताजीके अवतार) तथा रायरामानन्द (विशाखा सखीके अवतार) भागवतके श्लोकों तथा विद्यापति एवं चण्डीदासके पदोंका गानकर प्रभुको सान्त्वना प्रदान करते थे। दोनों बहुत कष्टसे प्रभुको सुलाकर देर रातमें चले जाते थे। उनके जानेके बाद जब प्रभुकी निद्रा टूट जाती थी, तो कृष्णविरहमें कातर होकर वे गम्भीराकी दीवारसे अपना सिर पटक-पटककर लहुलुहान कर लेते थे। कभी-कभी तो ऐसी अवस्था होती कि दरवाजे बन्द हैं, परन्तु प्रभु घरके भीतर नहीं होते थे। यह देखकर सभी भक्तोंका हृदय मानो फटने लग जाता। जब वे सभी प्रभुको खोजने निकलते तो देखते कि प्रभु मन्दिरके बाहर मूर्च्छित पड़े हुए हैं।

एक दिन तो आश्चर्यजनक घटना घटी। स्वरूपदामोदर तथा रायरामानन्दजी प्रभुको सुलाकर चले गये। दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया गया कि प्रभु रात्रिमें कहीं चले न जायें। जब प्रातःकाल होनेको आया, तो गोविन्दने विचार किया कि अन्दर कुछ आवाज नहीं आ रही, क्या कारण है? उन्होंने जैसे ही दरवाजा खोलकर देखा, तो पाया कि प्रभु भीतर नहीं हैं। यह देखकर उनके होश ही उड़ गये। वे दौड़ते-दौड़ते स्वरूपदामोदर, रामानन्दराय आदि भक्तोंके

पास गये तथा उन्हें यह बात बतायी। यह सुनकर सभी भक्तलोग प्रभुको खोजने निकले, परन्तु प्रभुका कुछ पता न चला। अन्तमें स्वरूपदामोदरने विचार किया कि अवश्य ही प्रभुने नीले समुद्रको यमुना समझकर उसमें छलाङ्ग लगा ली होगी। अतः वे सभी भक्तोंको साथ लेकर विलाप करते-करते समुद्रके किनारे-किनारे उन्हें खोजने लगे। उसी समय विपरीत दिशासे एक मछुआरा 'भूत-भूत' कहकर भागता हुआ आ रहा था। भक्त लोगोंने उससे पूछा तो वह बोला कि मैंने जब समुद्रमें मछली पकड़नेके लिए जाल डाला, तो उसमें एक भूत फँस गया। मैंने मछली समझकर उसे बाहर निकाल लिया। यह सुनते ही भक्तवृन्द समझ गये कि वह भूत नहीं, बल्कि हमारे प्राणनाथ ही हैं। अतः जब सभी लोग वहाँ पहुँचे, तो आश्चर्यसे उनका मुख खुलाका खुला रह गया। प्रभुका शरीर सिकुड़ गया था। उनके हाथ पैर शरीरमें घुस गये थे। उनका आकार एक कछुए जैसा हो गया था। यह देखकर भक्तलोग कीर्त्तन करने लगे। देखते-ही-देखते कुछ ही क्षणोंमें प्रभुका शरीर पहले जैसा हो गया और वे 'हरि-हरि' बोलते हुए उठ खड़े हुए और आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए कहने लगे—"मैं यहाँ कैसे आ गया। मैं तो वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी बांसुरीकी ध्वनि सुन रहा था।" ऐसा कहकर जोर-जोरसे 'हा कृष्ण! हा प्राणनाथ!' कहते हुए रोने लगे। इस प्रकार प्रभुने गम्भीरामें स्वरूपदामोदर एवं रायरामानन्दके साथ श्रीराधाजीके भावोंका आस्वादन किया।

इस जगत्में ४८ वर्ष तक रहकर श्रीमन्महाप्रभुने युगधर्म नाम-सङ्कीर्त्तनका प्रचारकर सम्पूर्ण जगत्को प्रेमकी बाढ़में डुबो दिया तथा स्वयं वे जिस विशेष कारणसे जगत्में आये थे—राधाजीके भावोंका आस्वादन करनेके लिए, उनका आस्वादनकर अपने धाम पधार गये।

## श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी जय!

# गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा अनुदित एवं सम्पादित)

## ग्रन्थावली

१. श्रीमद्भगवद्गीता
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थवर्षिनी-टीकानुवाद सहित)

२. श्रीमद्भगवद्गीता (पाकेट-संस्करण)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत
रसिकरञ्जन-टीकानुवाद सहित)

३. श्रीमद्भागवतम् श्लोकानुवादमात्र प्रथम-खण्ड (स्कन्ध १-४)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंकी टीकाओंपर आधारित)

४. श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध प्रथम-खण्ड (अध्याय १-८)
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

५. श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध द्वितीय-खण्ड (अध्याय ९-१६)
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

६. श्रीमद्भागवतम् दशम-स्कन्ध तृतीय-खण्ड (अध्याय १७-२८)
(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

७. श्रीबृहद्भागवातमृतम् (प्रथम-खण्ड)
(श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

८. श्रीबृहद्भागवातमृतम् (द्वितीय-खण्ड, प्रथम-भाग)
(श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

९. श्रीबृहद्भागवातमृतम् (द्वितीय-खण्ड, द्वितीय-भाग)
(श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

१०. श्रीमद्भागवतीय-चतुःश्लोकी
(श्रील श्रीधरस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ एवं
अन्यान्य वैष्णवाचार्योंकी टीकाओंके अनुवाद सहित)

११. श्रीरासपञ्चाध्यायी
(श्रील श्रीधरस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथकृत
टीकाओंके अनुवाद सहित)

१२. वेणु-गीत (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी-टीकानुवाद सहित)

१३. श्रीभागवतार्कमरीचिमाला (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

१४. वेदान्तसूत्र (प्रथम-अध्याय)
(श्रील बलदेव विद्याभूषणकृत गोविन्दभाष्य एवं सूक्ष्मा-टीकानुवाद सहित)

१५. गीत-गोविन्द (श्रीजयदेव गोस्वामीकृत, बालबोधिनी-टीकानुवाद सहित)

१६. शिक्षाष्टक (श्रीचैतन्यमहाप्रभुके मुख-निसृत उपदेश, सटीका)

१७. श्रीब्रह्म-संहिता (श्रीब्रह्मजीकी स्तुति, श्रील जीव गोस्वामी एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत टीकानुवाद सहित)

१८. श्रीदामोदराष्टकम् (श्रील सत्यव्रत मुनिकृत, श्रील सनातन गोस्वामीकृत टीकानुवाद सहित)

१९. उज्ज्वलनीलमणि (सम्पूर्ण) (श्रील रूप गोस्वामीकृत, सटीका)

२०. उपदेशामृत (श्रील रूप गोस्वामीकृत, सटीका)

२१. उत्कलिकावल्लरी (श्रील रूप गोस्वामीकृत)

२२. श्रीश्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिका (श्रील रूप गोस्वामीकृत)

२३. श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका (श्रील कवि कर्णपूर गोस्वामीकृत)

२४. मनःशिक्षा (श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीकृत, सटीका)

२५. सत्क्रियासार-दीपिका (श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामीकृत)

२६. माधुर्य-कादम्बिनी (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत, सटीका)

२७. श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

२८. उज्ज्वलनीलमणिकिरण (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

२९. श्रीभागवतामृतकणा (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३०. रागवर्त्मचन्द्रिका (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३१. प्रेम-सम्पुट (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३२. चमत्कार-चन्द्रिका (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत)

३३. सङ्कल्प-कल्पद्रुम (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकरकृत)

३४. जैव-धर्म (जीवका धर्म)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३५. श्रीचैतन्य-शिक्षामृत (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३६. श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३७. भजनरहस्य (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत, सटीका)

३८. भक्ति-तत्त्व-विवेक (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

३९. श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य (परिक्रमा-खण्ड)
(गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

४०. प्रेम-प्रदीप (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत पारमार्थिक उपन्यास)

४१. वैष्णव-सिद्धान्त-माला (गौड़ीय-वैष्णवाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)

४२. श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ (गौड़ीय-वैष्णवाचार्यों द्वारा रचित स्तव-स्तुतियों एवं भजनोंका अपूर्व सग्रंह)

४३. मायावादकी जीवनी (श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकृत)

४४. गौड़ीय-कण्ठहार (श्रीपाद अतिन्द्रय भक्तिगुणाकर प्रभुकृत)

४५. श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका चरित्र एवं शिक्षा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४५. श्रीब्रजमण्डल-परिक्रमा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४६. अर्चन-दीपिका (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४७. श्रीचैतन्यमहाप्रभुके स्वयं भगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

४८. श्रीरायरामानन्द-सम्वाद (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत, श्रीचैतन्यचरितामृतपर आधारित)

४९. श्रीजगन्नाथ-रथयात्रा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५०. नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत, श्रीचैतन्यभागवतपर आधारित)

५१. चार-वैष्णवाचार्य एवं गौड़ीय-दर्शन
(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५२. हरिनाम-महामन्त्र (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५३. श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५४. श्रीचैतन्य महाप्रभुके दानकी विशेषता
(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५५. प्रबन्धपञ्चकम् (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५६. श्रीचैतन्य-चरित्र-पीयूष (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५७. भक्त-प्रह्लाद—निर्भीक युवराज
(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५८. महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा-आश्रम
(श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

५९. भगवद्गीता-सार (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६०. शिवतत्त्व (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६१. आत्माके छिपे रहस्य (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६२. दिव्य-प्रेमकी विधि (श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकृत)

६३. श्रीश्रीभागवत-पत्रिका (मासिक)